Chapter. 1

HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

अध्याय प्रथम

दोहा छंद का प्रारूप, परिभाषा तथा प्रारंभिक प्रयोग

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

दोहा छंद, साहित्य में उस समय से है, जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था, लेखन के लिए भोजपत्र भी हर किसी को सुलभ नहीं थे। तब ऐसे समय में दोहा छंद ने अनिवार्य तथा उपयोगी कथ्यों एवं तथ्यों को मानवीय स्मृतियों में संरक्षित रखने की भूमिका का सफल निर्वाह किया।

संस्कृत भाषा में दोहा को ''दोग्धक'' कहा गया है । जो श्रोता/पाठक के चित्त का दोहन करले । ''दोग्धि चित्रमिति दोग्धकमे'', अस्तु दोहा, रसिकों के चित्त का ही नही बल्कि वर्ष्य विषय का भी सारतत्व दुहकर प्रस्तुत करता है, इसके अलावा दोहा को ''द्विपधा'', ''द्विपथक'', ''द्विपदिक'' आदि तत्सम् शब्दों से सम्बोधित किया गया है। साथ ही दोहे को क्षण भर में सुन-समझ लेने की प्रवृत्ति के कारण इसे ''क्षणिका'' भी कहा गया है। भारतीय काव्य साहित्य में ''बरवै'' छंद भी है जो दोहे का ही अनुज है जो ''हाइकू'' की तरह ही प्रचलित रहा है।

जैसे संस्कृत में ''अनुष्टुप'' ने न केवल काव्य का अपितु अधिकांश शास्त्र, संहिता, स्मृति, धर्म-दर्शन, वैधक ज्योतिष, अर्थशास्त्र, शब्दकोश तथा सहस्त्र नामों तक को पद्यबद्ध करने का दायित्व ग्रहण और निर्वहण किया है ठीक वैसे ही दोहा ने भी हिन्दी में बहु पारिवेशिक प्रगति की है। प्राकृत काल में यह छंद ''गाथा'' बनकर तथा उर्दू में शेर / कता की भाँति लोक प्रिय रहा। अपभ्रंश साहित्य में तो प्रयोग की नई ऊंचाई को छुआ तत्पश्चात हिन्दी साहित्य में दोहा सर्वप्रिय छन्द शिल्प रहा है। गाँव गलियारों से लेकर महानगर के राजपथों तक अटारियों बनों, खेतों खलिहानो तक इस

दोहा का गुंजित रहना इस बात का प्रमाण है कि वह चमत्कारिक परिव्याप्ति एवं वैशिष्ट को हमेशा धारण किये रहा है।

सवैया, धनाक्षरी, छप्पय, झूलना, कुण्डलिया आदि के समान दोहा भी भारतीय लोक-जीवन में सम्पृक्त है। लोक-मासन की सांस्कृतिक चेतना प्रायः दोहे के ही मुख से मुखर हुई है। दोहा ने जहाँ एक ओर रमणीय अर्थ प्रतिपादक शब्दों एवं रसात्मक वाक्यों से काव्य-प्रेमियों पर जादू डाला है वहीं दूसरी ओर धर्म-आध्यात्मक भक्ति आयुर्वेद लोकाचार, लोकनीति, खेती-किसानी और ऐसे अनेक विषयों को अपनी परिधि में समेटकर समूचे समाज को प्रभावित किया है। दोहा छन्द में ही अनेकों सूक्तियाँ व्यवहार जगत में दिखाई देतीं हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि लोककथा-लोकगीत की भाँति दोहा भी लोक-साहित्य का एक अंग बन गया है। अनेकों अज्ञात लेखकों के मंतव्य विचार दोहा के ही माध्यम से प्रकट होकर लोकार्पित हुए हैं जब अनेक हाथ मिलकर एक सामूहिक अनुभ व को पद्य में ढाल देते हैं - तब वह लोक साहित्य बनता है इसी द्रष्टि से लोक प्रचलित दोहा का ही अंश ''लोक दोहक'' है इनके रचनाकारों का तो पता नहीं क्योंकि इनमें मध्ययुगीन कवियों के समान नाम या उपनाम नहीं मिलते, यही है कि ये लोकदोहक सबके है किसी एक के नाम वसीयत नही लिखी। वृन्द, सम्मन, घाघभड्डरी, गिरिधर, बाबादीन, गिरि के वहुसंख्य सूक्त भी जन-जीवन में चलते-चलते लोक दोहक की ही श्रेणी में खडे हो गये हैं। जबकि कबीर, जायसी, तुलसी, रहीम तथा बिहारी, इन पाँचों कवियों के द्वारा दोहा को असाधारण लोकप्रियता तो अवश्य मिली पर ये दोहे लोक साहित्य की सरणि में नहीं आ सके।

दोहा छंद का ''लोकदोहक'' रुप अधिकांश मध्ययुगीन है अतः उसकी विचारधारा भी मध्ययुगीन है इस दोहकों में शैल्पिक सौष्ठव भले ही न हो, किन्तु वैचारिक गुरुत्व एवं भावनात्मक गाम्भीर्य भरपूर है जिसमें से बहुत कुछ आज भी प्रेरक एवं प्रासंगिक हैं। लोक दोहक रुप में दोहा आज भी ग्रामीण वृद्धों, महिलाओं, तीर्थ-घाटों, धर्म स्थानों, विद्यार्थियों, अध्यापकों, नट-कलाबाजों, अल्हैतो, भिक्षुकों, कथा वाचकों, सन्तों तथा किसानो में प्राप्य हैं । यद्यपि पर्याप्त मुद्रण व्यवस्था के कारण स्मरणीय के संरक्षण में मधययुग जैसी अब इसकी आवश्यकात कम रह गयी है इसके उपरान्त भी गद्य की अपेक्षा पद्य शीघ्र याद हो जाने के कारण आजकल लोकजीवन में दोहक रुप कहीं-कही अवश्य दिखाई पडते हैं। जैसे अंग्रेजी का कौन सा महीना कितनी तिथियों का होता है इसे सरलता से लोकजीवन में याद रखने के लिए निम्न दोहक प्रचलित रहा है -

जून नवम्बर जानिए अप्रैल-सितम्बर तीस ।
अट्ठाइस की फरवरी, बाकी सब इकतीस ।।[1]

लोक-संस्कारों की गहरी छाप और धरती के सोंधेपन से जुडे होने के कारण दोहा छंद में देशज शब्द ही अधिक प्रिय लगते हैं इसीलिए लोकभाषाओं में रच-बसकर दोहा अधिक प्रभावी रहा है। लिपिबद्ध होने से पूर्व दोहा श्रुति-परम्परा के ताल-संगीतानुसारी द्विपथक के रुप में प्रचलित रहा तथा लिपिबद्ध हो जाने के बाद दोहा को पिंगलीय आचार संहिता से अनुबन्धित होना पडा। आचार्यगण सदी-दर-सदी दोहा के स्वरुप, लक्षण, उदाहरण एवं भेदोपभेद पर मगजमारी करते रहे जैसे चौहदवीं शताब्दी में दोहा को उपदोहअ (दोहरा) अवदोहअ (सोरठा), संदोहय (दोही), चूडाल दोहअ (चुलियाला) और नन्दा दोहा (बरवै), आदि रूपों में विकसित होता रहा। गणात्मकता के कारण इसे वर्णवृत्त का कलेवर मिला तो, लयात्मकता ध्वनि-सौन्दर्य के कारण मात्राच्छन्द बना दिया। यहाँ एक बात निश्चित है कि पिंगलज्ञों ने दोहा के अनेक रूप भेद क्यों न किये हों परन्तु सर्वाधिक प्रचलित रुप वही है जिसमें विषम पदों में तेरह-तेरह तथा सम पदों में ग्यारह-ग्यारह मात्राओं का विधान है। हिन्दी के प्रसिद्ध पिंगलाचार्य श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के ग्रंथ ''छन्द-प्रभाकर'' में दोहा सम्बन्धित विशद् व्याकरण द्रष्टव्य है। एक छप्पय में उन्होंने दोहा के तेइस भेदों के नामकरण भी किये है-

भ्रमर सुभ्रामर शरभ श्येन मंडूक बखानहु
मर्कट करभ सु और नरहिं हँसहि परमानहु
गनहु गयन्द सु और पयोधर बल अवरेखहु
बातर त्रिकल प्रतच्छ कच्छपहु मच्छ विसेपदु
शार्दूल सु अहिवर काल जुत, वर बिड़ाल अरुश्वान गनि।
उद्दाम उदर अरु सर्प सुभ, तेइस विधि दोहा बरनि।।(2)

इसी दोहा छंद के थोड़े से फेर-बदल से अन्य कई छन्द बन जाते हैं जैसे यदि दोहा के पद-विन्यास को उलट दें तो वह 'सोरठा' बन जाता है। रोला के शीर्ष पर आरुढ होकर दोहा 'कुण्डलिया' का जादू भी चलाता है। 'अहीर' यह दोहा की ग्यारह-ग्यारह सम पद मात्राओं की ही उपज है । तथा समचरणों में पांच-पांच मात्राए बढा देने से चुलियाला (चूलिका), और दस-दस मात्राओं के योग से 'उपचूलिका' वृत्त बनते हैं। विषम पदों में दो-दो मात्राओं के जुडते ही ''उद्गाथक'', 'मदन विलास', एवं संदोहक नाम धारण हो जाते हैं। अवधी लोकभाषा का 'बरवै' दोहा का ही संक्षिप्त संस्करण है। युग प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद ने स्कन्द गुप्त में दोहे के समचरणों में दो-दो मात्राएं बढाते हुए अर्द्धसम से पूर्णक्षम वृत्त 'दोहकीय' में परणित कर दिया है-

धमनी में तन्त्री बजी, तू रहा लगाये कान।
बलिहारी मैं कौन तू, है मेरा जीवन-प्रान ।।(3)

दोहा छंद को प्राचीन कवियों ने पंचमात्रिक शिखाओं से सम्पन्न चूडाल रुप में भी स्नेहाभिनन्दित किया है तो भ्रमर गीत-सन्दर्भित अपनी पदावली में नन्ददास जीने दोहा को सपुच्छ बनाकर एक अभिनव तथा लोकाग्रही रुप भी प्रदान किया है।

कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' में दोहा छंद का बीज रुप प्राप्त होता है अपभ्रंश काल में शैशव अवस्था व हिन्दी के आदि काव्य में बाल्यावस्था, भक्तिकाव्य में कैशोर्यावस्था, रीतिकाल में यौवन और आधुनिक काव्य में प्रौढत्व प्राप्त हुआ है राजस्थानी आनबान ने दोहे को अनेक बार मोहित किया है क्योंकि दोहा की मूल वहीं है सौराष्ट्र में दोहा का सोरठा रुप प्रचलित रहा। गुजरात की 'द्वारकेश सतसई' और 'दया राम सतसई' दोहा रसिकों का कण्ठहार है।

सरहपा, धवल कवि, पुप्पदंत, देवसेन, धनपाल, स्वयंभू, नन्दिताद्य, तिलोपा, रामसिंह, हेमचंद्र, नेमिचंद्र, भण्डारि, अब्दुर्रहमान, राजशेखर, महेश्वर सूरि, सुप्रभ, नयनन्दि, जिनदत्त, श्रीधर हरिभद्र, सोमभद्र, देवसेन गणि, अमरकीर्ति, मेरुत्रुंग शालिभद्र सूरि, विद्यापति ठाकुर, इत्यादि जैसे महाकवियों की प्रतिभा से दोहे का प्रभाव निरन्तर बढ़ता गया है। साथ ही जैन-बौद्ध, सिद्ध-सन्तों के धर्मोपदेश, अध्यात्मदर्शन, चारण भाट कवियों की राजप्रशस्ति, प्रबन्ध मुक्तक रासक काव्य, कथा कोष और छन्दोनिरुपक लक्षण ग्रन्थ आदि दोहा के असंख्य व्याहतियों तथा नाना रुपों से रुपायित हैं।

मध्यकाल में दोहा अनेकानेक कवियों से सम्मानित हुआ गुरुनानक, अंगद, अमरदास, रामदास, गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर, गुरुगोविन्द सिंहजी, दादू दयाल, वषना, गरीबदास, मलूकदास, हरिदास निरंजनी, सुन्दरदास-प्रभृति सन्तो ने जहाँ दोहे को सद्ज्ञान का संदेशवाहक बनाया , वही दाऊद, कुतवन, मंझन, मलिक मुहम्मद जायसी, उसमान कासिम शाह, नूर मोहम्मद जैसे सूफी कवियों में अपने प्रेमाख्यान में दोहे के अस्तित्व को अपरिहार्यता प्रदान की। अष्टछाप के कवियों ने दोहा छंद में श्यामं-श्यामानुराग का स्वर भर दिया, तो रामभक्तों ने भारत के उदात्त आदर्शो को दोहा छंद में भरकर मर्यादा बोध एवं जन-मंगल के सम्पादन का सुयोग दिया। निर्गुण वादियों के ज्ञान-गौरव की गूढता, जटिलता, नीरसता तथा सूफी संतों की प्रेम-विह्वलता और सगुण मार्गियों की नैष्ठिक भक्ति भावना आदि विषय दोहा के माध्यम से जन-जन तक प्रसारित-प्रचारित हुए हैं। साथ ही मीरा के पदों में दोहे का एक विशेष प्रयोग जो लोकोक्ति रुप में प्रतिष्ठित है-

जो मै ऐसा जानती प्रीति किए दुख होय ।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति न करियो कोय ।।[4]

आम आदमी की जिन्दगी के लासानी चितेरे रहीम का सानिध्य पाकर दोहा छंदने अनपढ़ों में भी अपनी पैठ और पकड़ मजबूत बना ली।

रीतिकाव्य प्रवर्तक आचार्य कवि केशवदास/चिन्तामणि त्रिपाठी से भारतेन्दु तथा सनेही मण्डल तक की कालावधि में शायदही कोई कवि ऐसा हो जिसने दोहा को अपना शब्द-अर्ध्य न दिया हो। रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध एवं रीति मुक्ति तीनों कोटि के कवियों ने दोहा को राजविरुद, वीरपूजा, भृंगारोद्भावना, भक्ति नीति, काव्यांग निरुपण उदाहरण आदि की प्रस्तुति का पुष्ट आधार बनाया है।

आज दोहा, मुक्तक, युग्मक, विशेषक, कलापक, कुलक, सप्तक के अतिरिक्त पच्चीसी, बत्तीसी, चालीसा, बावनी, शतक, सतसई, हजारा जैसे संख्याश्रित मुक्तक काव्यों में व्याप्त है परन्तु प्राकृत की 'गाथा सतसई' के अनुसरण पर प्रवर्तित सतसई-परम्परा में दोहा का विशेष पल्लवन हुआ है इन सतसई रचनाकारों में ईश्वरदास, हित वृन्दावन दास, सुषमन गोस्वामी रामसहायक दास, बेताल, वृन्द, मतिराम, भूपति, चन्दन रसनिधि इत्यादि रीति कवियों की सतसइयाँ उल्लेखनीय हैं। जिसमें प्रमुखतः बिहारी लाल का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। जिन्होंने विश्व स्तर पर दोहे की कीर्ति को बढाया है अब कत की सतसइयों में 'बिहारी सतसई' मास्टर पीस है। यदि कुल मिलाकर कहा जाय तो मध्यकाल के कबीर, जायसी, तुलसी, रहीम एवं बिहारी दोहा के अनन्त रचनाकाश के अनवरत पाँच सितारे हैं इन पंच कवि रत्नों सो लोक-मन इतना आलोकित और प्रभावित है कि बीसवीं सदी के श्रेष्ठ दोहाकार श्री राम मधुकर को भी यह कहना पडा कि-

दोहन के सिर मौर हैं मधुकर पाँच फकीर।
तुलसि, बिहारी, जायसी, रहिमन और कबीर ।।[5]

इतिहास में व्यक्तित्व और कृतित्व के क्षेत्र में दोहे ने विशेष योगदान दिया है। अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज को न चूकने की प्रेरणा दोहा छंद में ही कवि चंदवरदायी ने दी थी। विश्व कवि तुलसी के हृदय में जो भक्ति-विस्फोट रत्नावली के व्यंग्य-कटाक्ष से हुआ था वह भी दोहा छंद में वर्णित है-

हाड–मास की देह ये तामै ऐसी प्रीति।
जो होती श्रीराम मै तो काहे भवभीति ।।[6]

तुलसी ने मनसबदारी के निमित्त अकबर के आमंत्रण पर अपना सात्विक स्वाभिमान प्रेषित करते कहा कि-

हौं चाकर श्रीराम कौ, पढ़ो लिखौ दरबार ।
तुलसी अब का होइंगें, नर के मनसबदार ॥(7)

इतिहास में महाराणा प्रताप सिंह से नाराज शक्तिसिंह को तुलसी ने दोहा छंद में ही संदेस भेजा। जिसके प्रभाव से शक्तिसिंह ने सुलह की

सघन चोर मग मुदित मन, धती गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव-विभीषणहिं, भई भरत की भेंट ॥(8)

ऐसे अनेक प्रसंग जो इतिहास में विशेष स्थान रखते हैं इनको दोहा छंद में व्यक्त किया गया है जैसे -

का बरनौ छवि आपकी भले बने हौ नाथ।
तुलसी-मस्तक तब नवै, धनुष-बाण लेउ हाथ ॥(9)

तुलसीदास की अपने आराध्य के प्रति अभिव्यक्ति चारिणी निष्ठा का सम्प्रेषण भी दोहा के ही द्वारा हुआ है तथा जिसे आधुनिक कवि मैथिलीशरण गुप्त में भी कहा है -

धनुर्बाण वा वेणु लो, श्याम रुप के संग ।
मुझ पर चढने से रहा, राम ! दूसरा रंग ॥(10)

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेश ।
जापर विपदा परत है सो आवत यहि देस ॥(11)

गोरी सोई सेज पे मुख पर डारे केस ।
चल खुसरों घर अपने रैन भई चहुं देस ॥(12)

'केसव' केसन अस करी, जस रिपुहू न कराहिं ।
चन्द्रमुखी-मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि ज़ाहिं ॥(13)

नहिं परागु, नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल ॥(14)

लघुवृत्तीय छन्द होने के कारण यह सहज ढंग से हृदयस्थ होकर लोक में रच-पच जाता है, रसिकजन इसे कंठस्थ कर लेते हैं, बालसुलभ प्रवृत्ति में भी यही दोहा छन्द अधिक कंठस्थ होने के अनुकूल है। अन्त्याक्षरी, वादविवाद जैसे विषयों में बच्चों को दोहे की अधिक याद रहते थे, स्त्रियों के लिए भी संस्कारगीतों में, मांगल्यगीतों में, धार्मिक तथा नीतियाम उपदेशों में ये दोहे ही ख़्यात

रहे हैं, यही कारण है इससे लोकाभिमुख स्वरुप सहज ग्राह्य होता है।

दोहा सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का उपासक तथा मानव मात्र का अनन्य शुभचिन्तक रहा है समय-समय पर दोहा ने समस्त समाज को मंत्र के समान प्रभावित एवं सक्रिय किया है। जन-मन को सकर्मक प्रेरणा देने के क्षेत्र में अन्य कोई दूसरा काव्य शिल्प दोहे की समानता नहीं कर सका है। समुदात्त भावों का अक्षय कोष सौंपकर कवियों को इसी दोहा छंद के ही कारण सभा रत्न से नवाजा गया, उन्हे पुरस्कार दिलाया। इस प्रकार अनेक भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए दोहा छंद की कीर्ति में निरन्तर वृद्धि होती रही है।

आज भारतेन्दुजी ने भी निजभाषा-उन्नति का कार्यभार दोहा को ही सौंपकर आधुनिक हिन्दी के अभ्युत्थान की पृष्ठभूमि तैयार की। पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', ठा. जगमोहन सिंह और रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' के विविध आयामी उद्गार दोहा के ही माध्यम से साहित्य संसार में संचरित हुए। लाला भगवानदीन, कविवर बन्धु बाबू किशोर चन्द्र कपूर 'किशोर', पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर', पं. रुपनारायण त्रिपाठी इत्यादि भी अपने रचना जगत में दोहा काव्य का ही प्रचुर उपयोग किया है। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरि औध', वियोगी हरि, दुलारे लाल भार्गव, शिवरल शुक्ल 'सिरस', सेंगर तथा राजेश दयालु ने रीतिकालोत्तर सतसई-परम्परा के अभिनव क्षितिज उद्घाटित किये हैं। द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त और छायावाद में प्रसाद जी का विशेष सहयोग रहा है किन्तु दुःख की बात तो तब हुई जब प्रयोगवाद - नई कविता के जमाने में अन्य छंदों के समान दोहा छंद को भी उखडकर भूमिगत होना पड़ा परन्तु फिर भी दोहा की दूर्वा (व्यास) धर्मिणी अस्मिता अपनी उपेक्षा के पत्थरो तले दबकर भी अंकुरण-शील रही फलतः अज्ञेय और धूमिल प्रयोगों के युगों में भी दोहे ने सामान्य जनों, धार्मिक-साहित्यिक मंचों एवं लोक-सुभाषितों से अपनी ज्ञेयता गेयता तथा उज्जवल छवि अक्षुण्ण रखी। फिर समय के बदलाव के साथ आयातित काव्य मूल्यों की धुंध छटते ही भारतीय छंदों पर थोपी गयी कालापानी की सजा पश्चाताप का विषय बनी । अब नवगीत, ग़ज़ल, मुक्तक, कवित्त, प्रबंधकाव्य मे फिर से छंदों को प्रतिष्ठा दी जाने लगी और दोहा ने भी फिर से अपनी ओजस्विता के दर्शन कराना शुरु किये हैं।

आज के व्यस्त युग में दोहा पूर्णतः प्रासंगिक है क्योंकि स्वल्प समय और कम से कम शब्दों में दोहाऐसी धारदार बातें करता है जो हमेशा-हमेशा के लिए मन में घर कर जाती है। ज्ञापन-विज्ञापन के इस दौर में भी दोहे के बिना कोई भी व्यक्तित्व पानीदार नही बन सकता इसलिए इसे गुन गुनाना आवश्यक ही रह जाता है।

हिन्दी साहित्य के रीतिकाल तक हास्यरस की रचनाएं अपवाद-स्वरुप भले ही मिलें परंतु उनका पर्याप्त रुप उपेक्षित अथवा अनुपलब्ध ही है। आजकल के हिन्दी-कवियों का ध्यान इधर अवश्य गया और उन्होंने पर्याप्त हास्य-व्यंग्य लिखकर एक 'व्यंग्य साहित्य' का सृजन किया है मन के अनेक विकारों को इस हास्य से ठीक किये जा सकते हैं। आचार्य वचनेश चोंच वंशीधर शुक्ल, रमईकाका, काका हाथरसी, शारदा प्रसाद भुशुषिठ, बेठव बनारसी, इत्यादि ऐसे अनेक कवि हैं जिनकी रचनाएँ पढकर/सुनकर हँसकर लोट पोट हो जाना पडता है। आजकल कई पत्र पत्रिकाओं में हँसने-हँसाने का काम दोहा छंद में ही हो रहा है।

जब बीसवीं सदी का समापन होने को आया तब आधुनिक खड़ी बोली में दोहे पर सामयिक विषय को लेकर नये प्रयोग हुए और दोहे की खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः स्थापित हुई। बहुमुखी प्रातिभा श्री देवेन्द्र शर्मा ''इन्द्र'' ने लगभग बीस हजार के आरूपास दोहों का सृजन करके हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान दिया है। इस पुरोधा कवि के द्वारा भारतीय संस्कृति के लग्नमंडप के तले सप्तपदियों के आयोजन का आमंत्रण पाते ही देश भर के अनेकों कवियों ने दोहा लिखना प्रारम्भ कर दिया जिनमें - सर्वश्री विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक', पाल भसीन, कुमार रवीन्द्र, ब्रज किशोर वर्मा 'शैदी', दिनेश शुक्ल, हस्तीमल 'हस्ती', जहीर कुरेशी, राजकुमार शर्मा, बाबूराम् शुक्ल, डॉ. कुंवर बेचैन, हरीश निगम, भारतेन्दु मिश्र, राजेन्द्र गौतम, शरदसिंह, भगवानदास, रवीन्द्र 'भ्रमर', निदा काजिली, राधेश्याम शुक्ल, यश मालवीय, राजगोपालसिंह 'श्याम', 'निर्मम', डॉ. उर्मिलेश, वेद प्रकाश पाण्डेय, भगवत दुवे, श्रीकृष्ण शर्मा, अनंतराम मिश्र 'अनंत', राधेश्याम शुक्ल, माहेश्वर तिवारी, कैलाश गौतम, केदारनाथ भट्ट, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, रामप्रताप द्विवेदी, कृष्ण कुमार त्रिपाठी, गौरीशंकर शास्त्री, डॉ. श्याम सुंदर 'बादल', छैल बिहारी अवस्थी 'छैल', डॉ. शिवनाथ राजा, चौरसिया, कुन्दनसिंह, शारदा मिश्र, अब्दुल अजीज 'अर्चन', शिव ओम 'अम्बर', गौरीशंर वैश्य, सूर्यभानु गुप्त, कैलाश सेंगर, अल्ला बख्श 'नाकाम', रमेश पाण्डेय इत्यादि कवियों ने अपना विशेष योगदान दिया है। इनमें से कुछ प्रयोजन बस दोहा के सर्जक बने तो कुछ की पूर्ण निष्ठा दोहे पर रही है और उन्होने दोहे पर पूरी-पूरी काव्य कृतियाँ भी प्रकाशित करवा ली हैं इसमें से प्रमुख दोहाकार के व्यक्तित्व-कृतित्व का उल्लेख प्रस्तुत शोधग्रंथ में हुआ है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

दोहा पानी के समान रंग हीन है अब यह कवि के ऊपर है कि रंग में उसे रंगता है चाहे जिस भाव का भावक या रस का रसिक बनायें। फिर भी गागर में सागर भरने वाले काव्य-रीति के सिद्ध बिहारी युग-युगांतरो में ही एक बार उत्पन्न होते हैं। शैल्पिक विन्यास की तुलना में दोहे में मार्मिक कथ्य की प्राण प्रतिष्ठा, वास्तव में टेढ़ी खीर है।

दोहा छंद का प्रारूप

छंद-शास्त्र को वेदों के छह अंगो में से एक स्वीकार किया गया है ''छंद पादौ तु वेदस्य'' के अनुसार यदि देखा जाय तो छंद, वेद का एक चरण ही है जिससे छन्द वेद जैसा ही पवित्र और कल्याणकारी है। छंदों का अपना एक शास्त्र है जिसके प्रणेता ''पिंगत ऋषि'' थे उन्ही के बनाये हुए नियम मे बँधकर संस्कृत तथा हिन्दी में काव्य रचना आरम्भ हुई। छन्द शास्त्र पर ऐसे अनेक प्राचीन ग्रन्थ हैं जिनमें छन्दों के बारे में शास्त्रीय नियम मिलते हैं ऐसे ग्रन्थों में छन्द-मंजरी, वृत्त-रत्नाकर, छंद-विनोद, छन्दसार आदि उल्लेखनीय हैं।

दोहा छन्द भारतीय काव्य परम्परा में हिन्दी साहित्य का लोकप्रिय छन्द रहा है इस छोटे से छन्द में काव्य की विभिन्न भावनाओं, कल्पनाओं और विभिन्न विषयों को अभिव्यक्त करने की तीव्र क्षमता है आज से सैंकडो वर्ष पूर्व से हिन्दी के कवि इस छन्द के माध्यम से वीर भक्ति नीति और श्रृंगार आदि विषयों पर आधारित काव्य की रचना करते आये हैं।

दोहा छन्द मूलतः आधुनिक हिन्दी का छन्द नहीं है यह अपने प्राचीन रुप से अनेक सोपानों से गुजरते हुए हिन्दी में आया है इस मात्रिक छंद के प्रारुप को समझने के लिए इसके विकास के क्रम पर अवलोकन करते हैं।

''जातीय संगीत और भाषा वृत्ति के आधार पर निर्मित लयादर्श की आवृत्ति को छन्द कहते हैं।''

छन्द में निश्चित मात्रा और वर्ण की गणना आवश्यक है। छंद शास्त्र से सम्बन्धित सबसे प्राचीन ग्रन्थ ''पिंगल छंदः सूत्र'' है। इसमें वर्ण तथा मात्रा के आधार पर छन्दों के दो प्रकार किये गये हैं -

1) **वर्णवृत्त छन्द**
2) **मात्रिक छन्द**

यदि प्राचीनता की दृष्टि से देखा जाय तो वर्णवृत्त छन्दों का विकास हमें वैदिक साहित्य से मिलता है वैदिक साहित्य से ही यह परम्परा लौकिक साहित्य में आयी जिसके परिणाम स्वरुप अनेक प्रकार के छन्दों की रचना संस्कृत के साहित्य में हुई अनेक छंदो की संस्कृत में रचनाएं हुई संस्कृत के पश्चात 600 वि.पू. से 600 वि. तक **''प्राकृत''** भाषा का काल माना गया है इस कालावधि में संस्कृत साहित्य की वर्णित छन्द परम्परा मे परिवर्तन आया और मात्रिक छन्दों के रुप में एक नवीन छन्द रचना का उदय हुआ। मात्रिक छन्दों में वर्णित छन्दों की ही भाँति वर्णों

का विशेष ध्यान नहीं रखा गया मात्रिक छन्दों की रचना में मुख्यतः प्रत्येक चरण की मात्रात्मक संख्या का विशेष ध्यान रखा गया है।

लौकिक संस्कृत के पश्चात प्राकृत भाषा का विकास तत्कालीन लोक परिवेश व लोक भाषा से हुआ था इसलिए इस प्राकृत भाषा को पहले जन भाषा बनना पडां तत्पश्चात ही इस भाषा में साहित्य का सृजन हुआ। लोक तत्वों का प्रभाव परंपरागत छन्द विधान पर भी पडा जिससे नृत्य और संगीत के आधार पर ही मात्रिक छन्दों का उदय हुआ। प्राकृत में ही गाहा (गाथा) नामक छंद की मुख्य रुप से रचनाएँ हुई मात्रिक छन्दों का मूल इसी छंद में प्राप्त होता है। और इसी **गाहा** (गाथा) से मात्रिक छन्दों का विकास हुआ है।

हिन्दी साहित्य में अपभ्रंश भाषा का समय 600 विक्रम संवत से 1200 विक्रम संवत तक का माना गया है। इस भाषा में संस्कृत के जो सुसंस्कृत शब्द थे वे अपभ्रष्ट रुप में प्राप्त होते हैं। अतः संस्कृत के विद्वानों ने इसे अपभ्रष्ट (अपभ्रंश) बिगडी हुई देशी भाषा कहा है इस काल में मात्रिक छंदों ने अपनी परम्परा और भी विकसित की संस्कृत के वर्णित छन्दों की तरह प्राकृत में भी अतुकांत छंद हुए हैं। किन्तु अपभ्रंश काल में छंदो के चरणो के अंत में तुक मिलाने की शैली का प्रारम्भ हुआ। जिससे छन्द को संगीतबद्ध करके उसे गेय बनाने में विशेष सुविधा मिली। इसी कलावधि में विशिष्ट छन्द ''**दोहा**'' या ''**दूहा**'' का उद्‌भव हुआ और उद्‌भव के साथ ही अपभ्रंश भाषा के साहित्य में इस छन्द का, सर्वाधिक प्रयोग हुआ है इसी कारण इस काल का दूसरा नाम '**दूहाबंध**' भी पडा। इसी काल में सोरठा और दोहा दोनों में पर्याप्त अन्तर नहीं था इसलिए इन दोनों छन्दों को '**दूहा विधा**' के अंतर्गत स्थान मिला । प्रबंध चिन्तामणी में तो इस कालावधि में दूहा विद्या पर विवाद करने वाले दो चारणों की कथा है जो यह सूचित करती है कि अपभ्रंस काव्य को दूहा विद्या भी कहा गया था ।

'दोहा' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ-परिवर्तन को लेकर डॉ. ओमानन्द रु. सारस्वत ने तीस शब्दों की विद्वतापूर्ण समीक्षा की है। डॉ. सारस्वत का विवेचनात्मक निष्कर्ष दो प्रकार का है - व्युत्पत्ति निमित्त तथा प्रवृत्ति निमित्त व्युत्पत्तिनिमित्त के अनुसार वे '**दोधक**' शब्द से ही 'दोहा' शब्द की व्युत्पत्ति उचित ठहराते हैं और ऐसी हालत में '**दोधक**' छन्द में 'दोहा' छन्द का सम्बंध होने या न होने की संभावना छोडकर वे अर्थ परिवर्तन को स्वीकार करते हैं। प्रवृत्ति निमित्त के अन्तर्गत डॉ. सारस्वत ने '**दोहा**' को लोकभाषा का शब्द और छंद स्वीकृत किया है उनकी धारणानुसार नाम साम्य पर संस्कृत के '**रोधक**' नामक छन्द के '**दोधक**' शब्द से लोकभाषा में 'दोहा' शब्द प्रलित हुआ होगा, जो वर्षो लोकभाषा में प्रचलित के पश्चात शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त होने लगा होगा।''

(डॉ. ओमानंद रु. सारस्वत, ''दोहा : शब्द और व्याप्ति'' पृष्ठ : 34)

जहाँ तक 'दूहा' शब्द की व्युत्पत्ति का प्रश्न है तो पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मतानुसार ''दोधक'' संस्कृत का समचरणों वाला एक वर्णवृत्त छंद है जबकि वहीं दूहा विषम चरणों वाला एक मात्रिक छन्द है दोहा के विकास क्रम को दर्शाते हुए मिश्र जी कहते हैं कि ''यह संभवता दो+पद से बना होगा या दो+गाथा से दो+गाहा दो आहा और इसी से हिन्दी में दोहा बन गया।''

'दूहा' का एक अन्य नाम **''दुहड़उ''** भी मिलता है अपभ्रंश की प्रकृति के अनुसार 'ड़ा' प्रत्यय का जुड़ जाना असम्भव नहीं है अतः इसके 'दुहडा' या **'दोहडा'** रूप को स्वभाविक ही माना जायेगा **'दोहरा'** इसके नाम परवर्ती रूप सर्वज्ञात ही है।

'दोहा' छंद अपभ्रंश में कैसे आया इसके सम्बंध में विद्वानों में विभिन्न मत एवं अनुमान हैं। यहाँ इस सम्बंध में राहुल सांस्कृत्यायन का मत है, कि ''यह ग्रीक शब्द से लिया गया है। इसें शक नहीं ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी से ईसा की पांचवी सदी तक यवन ग्रीक, हूण आदि जातियाँ भारी संख्या में भारत में आकर बस गयी। यद्यपि कुछ ही पीढियों में वह अपनी भाषा खो बैठी, लेकिन उनके गीतों की ध्वनियाँ और छन्द इतनी जल्दी भुलाएं नहीं जा सकते थे। हिन्दी ने मुस्लिमकाल में अरबी, फारसी विशेष कर अरबी के कितने ही छंदों को ले लिया जिनका प्रयोग आज भी मिलता है विशेष कर अरबी के कितने ही छंदों को ले लिया जिनका प्रयोग आज भी मिलता है ऐसे ही यदि उपरोक्त धुमन्तु जातियों के गीतों और छन्दों के बारे में किया गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है यदि दोहा को इस तरह अपनाया गया हो तो, अधिक संभव है, वह यवनों से नहीं बल्कि शकों से लिया गया होगा। शक सामन्त हमारे यहाँ के संभ्रान्त राजपूतों, जाटो, अहीरों, गूजरों के रूप में आज भी मौजूद हैं। जिस तरह के भारतीय जाति के अभिन्न अंग हो गये, वैसे ही उनके कुछ छन्द और लय भी यदि जनप्रिय होकर हमारे हो गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं।''

(राहुल सांकृत्यायन, दोहाकोश (भूमिका) पृष्ठ 64-65)

दोहा अर्द्धविराम मात्रिक छन्द है, इस छन्द के अन्तर्गत चार चरण होते हैं इसकें प्रथम (पहले) और तीसरे चरण में तेरह-तेरह (13-13) मात्राएं तथा दूसरे और चौथे चरण में ग्यारह-ग्यारह (11-11) मात्राएं होती हैं। दोहा छन्द के विषम चरणों के आदि में जगण नही होना चाहिए तथा सम चरणों के अंत में गुरु लघु होना चाहिए इस छन्द के दूसरे और चौथे चरण को सम चरण कहते हैं । इन सम चरणों में ही तुक मिलाते है। दोहे में चौबीस-चौबीस मात्राओं के दो चरण होते हैं कुल दोनों चरणों मे अड़तालिस (48) मात्राएं होती हैं, वस्तु कहीं-कहीं पर एक मात्रा कम या अधिक हो सकती है।

रूपात्मक द्रष्टि से दूहो के प्रमुखतः पाँच रुप मिलते हैं (डिंगल में दोहा को 'दूहो' कहा जाता है) यथा - दूहो, सोरठियो दूहो, बडो दूहो, तूँवेरी दूहो और खोडो दूहो।

(1) **दूहो** :- यह एक मात्रिक छन्द है जिसमें चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरण में 13-13 मात्राएं होती हैं और दूसरे व चौथे चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं। यथा -

> **राजनीति रै रोग सूं, बढै विपद जद पूर।**
> **मेटै संकट मुलकरो, कै सहित कै सूर ॥[15]**

(2) **सोरठियो दूहो** :- इसके पहले और तीसरे चरण में 11-11 मात्राएं तथा दूसरे और चौथे चरण में 13-13 मात्राएं होती हैं। तुक मध्य में मिलती है। यथा -

> **अकबर समन्द अथाह, तिहं डूबा हिन्दू तुरंक ।**
> **मेवाड़ो विण मांह, पोयण फूल प्रताप सी ॥[16]**

3) **बडो दूहो** :- इसका दूसरा नाम 'सांकलिया दूहो' भी है। इसके पहले और चौथे चरण में 11-11 मात्राएं तथा दूसरे और तीसरे चरण में 13-13 मात्राएं होती हैं पहले और चौथे चरण की तुक मिलती है। यथा -

> **रोपी अकबर राड़, कोट झडेनद कांगरे ।**
> **पटके हाथल सीह पण, बादल हवै न बिगाड़ ॥[17]**

(4) **तूँवेरी दूहो** :- यह बडो दूहो का उल्टा है इसके पहले और चौथे चरण में 13-13 मात्राएं तथा दूसरे और तीसरे चरण में 11-11 मात्राएं होती हैं। दूसरे और तीसरे चरणों की तुक मिलती है। यथा-

> **मेवा तजिया महमहण दुरजोधन रा देख ।**
> **कैला होत विसेख, जाय विदुर र जीनियां॥[18]**

(5) **खोड़ो दूहो** :- खोड़ो शब्द का अर्थ हिन्दी में लंगडा होता है जिस दोहे का अंतिम चरण चरण कम मात्राओं का हो वह खोडो दूहो कह लाता है इसके पहले और तीसरे चरण में 11-11 मात्राएं होती है और इन्ही की तुक भी मिलती है। चौथे चरण में छह और दूसरे चरण में तेरह मात्राएं होती हैं यथा-

> **नाड़ी भर्‌यो नीर, टाबरियो झूलण गयौ।**
> **तरै न पूगो तीर, रो डूबौ..... ॥[19]**

दोहा मूलतः लोक छन्द है भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार हम यह जानते हैं कि समाज में दो प्रकार की भाषाओं के रुप प्रचलन में रहते हैं एक रुप लिखित रुप में होता है जिसके सहारे साहित्य की रचना होती है तो दूसरा रुप भाषा का वह है जिसें मानव समाज आपस में बोलचाल व व्यवहार करता है जिसे हम लोकभाषा कहते हैं यही लोक भाषा शनैः शनैः साहित्यिक भाषा का रुप ग्रहण करती है भाषा की इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए दोहा भी लोक कण्ठ से निकल कर अपभ्रंश के साहित्य में आया है।

प्राकृत साहित्य में जो स्थान गाथा का है उसी तरह अपभ्रंश में दोहा छन्द का है । अपभ्रंश भाषा के उत्थान और उससे देश भाषाओं के विकास की कहानी के साथ 'दोहे' का निकट का सम्बन्ध जुडा है।

''जैसे श्लोक, लौकिक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का प्रतीक हो गया है, उसी प्रकार दोहा अपभ्रंश का।''

(डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ ९')

अपभ्रंश में मुक्तक पदों के रुप में अनेक दोहे मिलते है जिस तरह प्राकृत में ''गाथा सप्तशती'' तथा बज्ज़ालग्ग जैसे गाथा पद्य संग्रह मिलते हैं उसी तरह हिन्दी में बहुत प्राचीन दोहा संग्रह मिलते हैं सबसे पहले उपदेश नीति एवं मुक्तक पद्यो के रुप में तो दोहो का प्रयोग मुनि योगीन्द्र, रामसिंह देव सेन तथा बौद्ध सिद्धों ने किया है स्वयम्भू के पद्मचरित्र में भी दोहों का प्रयोग मिलता है।

बीज रूप में दोहा की ही प्रवृत्ति को लिये निम्न छन्द अपभ्रंश काल से पूर्व ही कालिदास के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है कालिदास के **''विक्रमोर्वशीयम्''** का निम्नलिखित छन्द दोहा के बहुत ही निकट है।

मई जाणिउं मिअलोयणिं णिसियरु कोई हेरइ।
जाव ण णव ताडिसामलो धाराहरु वरिसेई ।।[20]

दोहा मौखिक रुप में प्राचीन काल से ही प्रचलित रहा है, जो चारणों द्वारा गा-गाकर लोक समाज में सुनाया जाता रहा है। ''ढोला मारुरा दूहा'' इसी परंपरा का प्रतीक है।

अपभ्रंश काल में दोहों पर साहित्य सृजन विपुल प्रमाण में हुआ है। यह छंद जैन कवियों का प्रसिद्ध छन्द रहा है । हेमचंद्र कृत ''सिद्धहेमचंद्रानुशासन'', मुनि रामसिंह कृत ''पाउड दोहा'' तथा देव सेन कृत ''सावधम्म दूहा'' आदि रचनाएँ अपभ्रंश काल में रचित जैन कवियों की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं जिनमें विशेष रुप से दोहों का वर्णन मिलता है।

संवत 990 में देवसेन नामक एक जैन ग्रंथकार हुए हैं जिन्होंने ''श्रावकाचार'' नामक कृति दोहा शैली में रचित की जिसकी भाषा अपभ्रंश का अधिक प्रचलित रुप लिए हुए हैं उदाहरण द्रष्टव्य है-

जो जिण सासण भाषियउ सो मई कहियउ सारु ।
जो पालइ सइ भाउ करि, सो तरि पावइ पारु ॥(21)

– देवसेन कृत 'श्रावकाचार' से

बौद्धों और सिद्धों के साहित्य पर भी यदि हम द्रष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि दोहों की रचनाएँ प्रमुख रुप से मिलती है। सिद्ध सरहपा तथा कण्हपा कृत 'दोहा कोष' इस काल के सिद्धों के दोहा ग्रंथ हैं । सिद्धों में सबसे पुराने 'सरहपा' जिनका काल डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य ने विक्रम संवत 690 निश्चित किया है । उनके दोहों में अपभ्रंस मिश्रित देशभाषा का रुप मिलता है। उदा. द्रष्टव्य है -

जाहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाहि पवेस।
तहि वट चित्त विसाम करुं सरहे कहिय उवेस॥(22)

अपभ्रंश काल में इस छंद को बहुत ही प्रसिद्धी मिली है । प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय में इसका प्रयोग हुआ है। नाथ पंथियों के साहित्य में भी इस छन्द को विकसित होते हुए देखा जा सकता है। प्रमुखतः यदि हम समग्र अपभ्रंश साहित्य पर नज़र डालते हैं तो हम पाते हैं कि इस कालावधि में दोहों का प्रयोग मुख्यतः चार प्रकार के विषयों पर देखा जा सकता है-

(1) निर्गुण प्रधान और धार्मिक उपदेशक दोहे

इस वर्ण्य विषय मे गठित दोहे हमें बौद्धो सिद्धो और जैन मुनियों की रचनाओं में प्राप्त होते हैं तथा धार्मिक उपदेश के कुछ दोहे हेमचंद के दोहों में भी प्राप्त होते हैं।

सिव विण सत्रिण वावरइ, सिउ पुणु सत्रि विहीणु।
दोहिं मिं जाणहि सयलु जगु, बुज्झइ मोहि विलीणु॥(23)

(2) शृंगारी दोहे :- प्राकृत की गाथाओं की भाँति ही ये दोहे फुटकर दुपंक्ति बद्ध अपभ्रंश भाषा में बहुत अधिक प्रचलित रहे हैं । इन दोहों में रूप वर्णन, विरह की उग्रता, मिलन का उल्लास और हाव भाव लीला आदि विषय भावों के बिहुत ही मार्मिक व सुन्दर वर्णन होते रहे हैं। हेमचंद्र के व्याकरण में तथा प्रबंध चिंतामणि आदि ग्रंथों में ऐसे दोहे पर्याप्त मात्रा में संग्रहित हैं ।

मुंज भणइ मुणालवइ जुन्वण गयुंण झूरि।
जइ शक्कर सय खंड मिय तो इस मीठी–चूरि ॥[24]

(3) **नीति विषयक दोहे :–** यह दोहे शिक्षात्मक हुआ करते थे इनमें अवसर एवं उचित कर्तव्य निष्ठा आदि की शिक्षा मनुष्य को दी जाती थी इनका भी पता जैन मुनियों एवं सिद्धों के संग्रहीत दोहों से ही लगता है।

पंडिअ सअल सत्य बक्खाणइ,
देहहि वृद्धि वसंत ण जाणइ।
गम वागमण ण तेण विखंडिअ,
तो बि णिलज्ज भणइ हउं पंडिअ ॥[25]

(4) **वीर रस दोहे :–**

दोहो में यह रस तत्कालीन साहित्य में छलकता था ये अपभ्रंश की अपनी विशेषता रही है। इन दोहों में एक नई महत्वपूर्ण बात यह थी कि स्त्रियों के मुख से अपने वीर पतियों के सम्बंध में अपूर्व दर्पोक्तियाँ कहलाई गई हैं। ऐसे ही ''सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन'' में संग्रहित कुछ दोहों में मिलते हैं जिनके हिन्दी के प्रारम्भिक रूप का भी पता चलता है। तथा वीर रस भी छलकता दिखाई देता है-

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जं तु वअंसिहु जइ भग्गाधर एंतु ॥[26]

अपभ्रंश के पूर्व जो साहित्य था उसमें इस श्रेणी की रचनाएं कदाचित् ही मिलती हैं।

यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि अपभ्रंश साहित्य में दोहों का प्रयोग मुक्तक काव्यः के रूप में ही हुआ है। प्रबंध काव्य के रूप में दोहापे का प्रयोग हिन्दी में आने के पश्चात ही हुआ। दोहा के साथ-साथ अपभ्रंश काल ही में चौपाई, सोरठा, छप्पय, कुंडलियां, तथा रोला आदि अन्य मात्रिक छन्द भी उदय हुए परन्तु इन छन्दों का पूर्ण विकास, विस्तार हिन्दी साहित्य में ही दिखायी देता है।

हिन्दी के आदिकाल में डिंगल और पिंगल, दोनों प्रकार के काव्यों में दोहा छन्द में गठित रचनाएं प्राप्त होतीं हैं । अपभ्रंश भाषा से आये हुए इन छन्दों को राज दरबारों में अच्छा सम्मान मिला अनेक राजकवियों में इसी छन्द को लेकर रासो ग्रंथों की रचना की है। रासो साहित्य में प्रयोग होने वाले दोहे की विशेषता यह है कि इनमें चरणान्त में सदैव संयुक्ताक्षरी होता है। यथा-

ग्रह सरपंच चप हंस हथ, लगन सु अष्टम मन्द।
दुनियाँ गुरु मेषद तरनि, चित्रह जनम नारिन्द ।।(27)

विकास की दृष्टि से यदि देखा जाय तो दोहे के लिए हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल महत्वपूर्ण समय है। इस काल तक आते-आते दोहों की शैली में पर्याप्त अन्तर आया है। संत कबीर ने अपने काव्य में दोहा का भरपूर प्रयोग किया है। संत कबीर ने अपने काव्य में दोहा का भरपूर प्रयोग किया है दोहा छन्द शैली मे लिखे कबीर के ये पद साखी के नाम से प्रसिद्ध हुए । साखी का अर्थ है साक्षी अर्थात वे कथन (वाक्य) मानों जो सच्चे गुरु के द्वारा दिये गये उपदेशों का प्रत्यक्ष रुप हैं। गुरु के आदेश को साक्षी माना जाता है। भाव व्यक्त करने की इसी शैली में लिखे गये वृंदावन के रसिक आचार्यो की वाणी भी साहित्य में विद्यमान है गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत कबीर की 'साखी' तथा अन्य निर्गुण मार्गी संतो के दोहों को श्लोक या सलोक भी कहा गया है सलोक या श्लोक के रुप में अनेक सिक्ख गुरुओं ने दोहों की रचनाएं की हैं इसी भक्तिकाल में अष्टछाप के कुछ कवियों ने भी दोहे रचे हैं इस काल के प्रसिद्ध दोहाकार रहीम ने दोहा की पहचान बताते हुए कहा है कि-

रुपकथा पद चारु पट, कंचन दोहा लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्मगति, मोल रहीम विशाल ।।(28)

दोहा की विशालता का वर्णन करते हुए रहीम ने लिखा है कि-

दीरध दोहा अरथ के, आखर थोरे आँहि।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिट कूदि बढ़ि जाहि ।।(29)

तत्कालीन कालावधि में रहीम दास जी ने जो नीति विषयक दोहों की रचनाएं की थी वे आज आधुनिक युग में भी जन मानस को प्रिय लगती है।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, काकरि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ।।(30)

इस काल के प्रमुख कवियों ने चौपाइयों के बीच बीच में दोहा लिख-लिखकर प्रबंध काव्यों की रचनाएं की है। चौपाई के बीच दोहा का प्रयोग तो अपभ्रंश काल से प्रारम्भ हो गया था। बाद में इसी प्रकार का काव्य कबीर दास के बीजक में संग्रहित 'रतौनियों' के रूप में प्राप्त होता है। किन्तु इस शैली में प्रबंध काव्य की रचना विशेष कर इस काल में ही अधिक हुई है। भक्ति काल के सूफी कवि जायसी द्वारा रचित 'पदमावत' तथा तुलसीदास द्वारा रचित ''राम चरित मानस''

इसी शैली में रचित महाकाव्य है। भक्तिकाल में तुलसीदास का अत्यन्त प्रिय छन्द 'दोहा' रहा है इसलिए उन्होंने दोहा के विषय में लिखा है कि-

मणि मय दोहा दीप जहाँ, उर घट करे प्रकास।
तहँ न मोह मत मय तमी, कलि कज्जली विलास ।।(31)

तुलसीदास ने 'दोहा' छन्द का प्रयोग तो अपने काव्य में किया है साथ ही पृथक से 'दोहावली' नामक प्रसिद्ध कृति की रचना की है। जिसके कारण दोहा छन्द और भी अधिक प्रचलित एव लोकप्रिय बनकर गौरवांकित हुआ है।

रीतिकाल तक पहुंचते पहुंचते 'दोहा' हिन्दी काव्य में एक छन्द के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। अधिक लोकप्रियता व अपनी कार्यक्षमता व गागर में सागर भरने की क्षमता के कारण दोहा ने रीति ग्रन्थों में श्रेष्ठ स्थान पाया है। कविवर बिहारी इस युग के सुप्रसिद्ध दोहाकार हैं जिस प्रकार से नीति विषयक दोहों की रचना करके रहीम ने इस छन्द को जनप्रिय बनाया उसी तरह बिहारी ने श्रृंगारी काव्य इसी दोहा छन्द मे रचकर इसे और भी अधिक लोकप्रिय बनाया। बिहारी ने दोहा छन्द में ही 'सतसई' की रचना की है जिसके विषय में विद्वानो का कहना है कि-

सतसैया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करें गंभीर।।(32) – लोकोक्ति

'दोहा' छन्द की प्रसिद्धि बढाने में रसखान का इसी काल में श्रेष्ठ योगदन रहा है। रसखान मे प्रेम विषयक दोहों का सृजन किया है। जो अध्यात्म व परमात्मा की प्राप्ति में साधन का कार्य करते हैं । प्रेम के विषय में रसखान कहते हैं कि-

जेहि बिनु जाने कछुहिं नहिं, जान्या जात विशेष।
सोइ प्रेम जेहि ज़ानि कै, रहि न जात कछु सेष।।(33)

उपरान्त मति राम तथा वृन्द आदि कवियों का इस काल मे श्रेष्ठ योगदान रहा है जिन्होने दोहा छन्द मे काव्य रचना करके हिन्दी साहित्य में इस छन्द की गरिमा को बढाया है।

हिन्दी साहित्य के काल विभाजन की दृष्टि से रीतिकाल के वाद आधुनिक काल आता है।

आधुनिक काल के कवियों ने दोहा को रीति काल के ब्रजभाषा काव्य से निकालकर उसका प्रयोग खड़ी बोली की कविताओं में प्रारम्भ किया, साथ ही साथ दोहा के जो वर्ण्य विषय रीतिकाल में थे उनमें भी बदलाव आया और इस दोहा छन्द में रचित काव्य मानव समाज की यथार्थता से

जुडा। इस प्रकार दोहा अपने विकास के अनेक सोपानों को पार करते हुए आज के युग में भी एक प्रगतिशील छन्द है।

वर्तमान काव्य में भले ही छन्दो का महत्व नही रहा परन्तु फिर भी हिन्दी और उसकी बोलियों जैसे ब्रजभाषा, अवधी तथा वुन्देली आदि के सैकड़ों मंचीय कवि एवं गीतकार आज के आधुनिक विषयों पर दोहा की रचना कर अपने काव्य की यश वृद्धि कर रहे हैं। जिसका कारण है इस छन्द में व्याप्त गेय तत्व इसे चालीस राग-रागनियों में गाया जा सकता है। इसीलिए यह छन्द सभी छन्दो में शिरोमणि छन्द है। आचार्य रांमचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का आदिकाल सं. 1050 से मान्य माना है, तब से लेकर आज तक हिन्दी साहित्य में दोहा छंद ने जिस प्रकार विकास की नई ऊंचाईयों को छुआ है। यह हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की बात है। हिन्दी के आदिकाल से ही यह छन्द लोक एवं कवि जगत में अत्यधिक प्रिय रहा है। लगभग 12वीं शताब्दी में पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि मित्र 'चन्द्रवरदाई' को एक जनश्रुति के अनुसार 'हिन्दी' साहित्य जगत् का प्रथम दोहाकार स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि उनसे सम्बंधित निम्नलिखित दोहा हिन्दी के बहुत ही निकट है -

चार वाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
ता ऊपर सुल्तान है, मत चूको चौहान॥(34)

वैसे देखा जाय तो उपर्युक्त दोहा किंवदन्ती के रूप में अधिक चर्चित हुआ है। चन्दवरदायी पृथ्वीराज चौहान के कवि मित्र होने के साथ-साथ सामन्त भी थे अतः युद्ध में भी साथ रहते थे। अतः पृथ्वीराज के जीवन को उन्होंने हर जगह देखा था। इसी जीवन का वर्णन कवि चंद ने ''पृथ्वीराज रासो ग्रंथ में किया है इस ग्रंथ में अनेको'' दोहों के माध्यम से विषय वर्णन किया गया है। इसी काल में अमीर खुसरो के हिन्दी काव्य में हमें दोहों के दर्शन होते हैं-

अमीर खुसरों का भी दोहा छंद प्रिय रहा है।

उर्दू काव्य के प्रवर्तक इस कवि की दोहा छंद पर असीम कृपा रही है अपने सद्गुरु ख्वाजा निजामुद्दीन की समाधि के प्रथम दर्शन पर उन्होंने जो रहस्यगर्भित उद्गार व्यक्त किये थे वे अमर हो गये-

गोरी सोई सेज पै, मुख पर डारे केस ।
चल 'खुसरो' घर आपने, रैन भई चहुं देस॥(35)

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल मे दोहा छंद हिन्दी साहित्य जगत का सिरमौर बनकर अपने सामर्थ्य का डंका बजवाता रहा है। देश के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में तव इसका एक छत्र राज्य था। कबीर, जायसी, रहीम, तुलसी, गिरधर, वृंद रसखान, रसलीन केशव, सूरदास, दादू दयाल, गुरुनानक देव, रविदास, मलूक दास जैसे महान कविर्मनीषियों ने जीवन के विभिन्न पक्षों को लेकर प्रचुर मात्रा में प्रखर दोहों का सृजन करके इस छंद को महिमा मंडित कराया है इसलिए हम यह कह सकते हैं कि दोहे के विकास की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल महत्वपूर्ण समय है । इस काल क्रम में दोहों की रचनात्मक शैली में पर्याप्त अन्तर आया।

संतकबीर ने अपने काव्य में दोहों की रचना की है जो आज साखी के नाम से प्रसिद्ध है साखी को गुरु के आदेशों की साक्षी माना जाता है। गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहीत कबीर की साखियों तथा अन्य निर्गुण पंथी संतो के दोहों को सलोक या श्लोक भी कहा जाता है।

संतकबीर के दोहे सधुक्कडी एवं फक्कडी वृत्ति के रुपायित जीव ब्रह्म, माया, गुरु महिमा, संसार की क्षण भंगुरता अद्वैतवादी दर्शन आदि को सार्वकालिकता एवं सार्वभौमिकता के निकष पर तथ्यों एवं कथ्यों का रहस्योद्‌घाटन करते हुए आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। उनमें वही ताजगी वही चेतना का संचार एवं जीवन के आदर्शो की झलक आज भी स्पष्ट दिखायी देती है।

यह तन काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ।।(36)

अकथ कहानी प्रेम को, कछु कही न जाय।
गूंजे केरी सरकरा, खाइ और मुस्काय।।(37)

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूंढै बन माहिं।
ऐसे घटि घटि राम हैं दुनियां देखे नाहिं।।(38)

केला तवहिं न चेतया, जव ढिंग लागी बेर।
अब के चेते का भवो जब कांटा लीन्हा घेर।।(39)

इस प्रकार कबीर जीवन के विभिन्न उपदेशों नीतिविषयक मार्गदर्शन व परमात्मा प्राप्त का सही मार्ग इन साखियों के द्वारा व्यक्त करते हैं। हलांकि कविता करना कबीर का ध्येय नहीं था और न ही वे कवि बनना चाहते थे पर उनकी साखी काव्य रुप में गठित होकर प्रस्तुत हुई है। कबीर गुरु को जीवन में बहुत महत्व देते हैं। क्योंकि सच्चा गुरु ही परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग बता सकता है। उन्होंने कहा है कि-

गुरु गोविन्द दोऊ खडे काकों लागू पांय।
बलिहारी गुरु आपणी गोविंद दियो वताय॥(40)
– गुरुदेव को अंग (कबीर की साखी)

तत्कालीन समाज में फैले अनीति, आडम्बर पर कबीर ने इन्ही दोहों के माध्यम से गहरी चोट कीं उनके दोहे ऐसे में गागर में सागर भरने की वृत्ति रखते थे। तिलक लगाना, सिर मुडवाना, बाँग देना आदि आडम्बर के वे विरोधी थे वे कहते हैं कि -

कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चिनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे बहरा हुआ खुदाय॥(41)
– कबीर की साखी

इस प्रकार तत्कालीन समाज का सही रास्ता दिखाने के लिए कबीर ने जिस प्रकार की साखी का सृजन किया वह दोहे का ही रुप है। यद्यपि छंद शास्त्र के ज्ञान के अभाव में इन साखियों में दोहा का विकृत तथा अव्यवस्थित रुप दिखायी देता है। फिर भी दोहे की जो सामान्य विशेषताएं होती हैं। वे इन साखियों में विद्यमान है वैसे इन साखियों के सृजन का लक्ष्य तो यही था कि अपनी बात को जन जन तक पहुंचाना, उपदेश देना, यह दोहा की शैली गेय होने के कारण उन्होंने दोहा छंद का सहारा लिया।

यदि दोहा और साखी के अत्तर पर विचार किया जाय तो हिन्दी साहित्य का साखी शब्द साक्षी का अपभ्रंश अथवा तदभव स्वरुप है। दोहा और साखी अर्थ की दृष्टि से तो समानार्थक ही है कबीर से पूर्व भी बौद्धों, सिद्धों को भी इस शब्द का ज्ञान अवश्य था इसीलिए शायद साहित्य में साखीकरण जालन्धर पाएँ पंक्ति में जालन्धर को साक्षी करने का उल्लेख आया है। इन साखियों में अनुभूत ज्ञान एवं भुक्त भोगी प्रत्यक्ष ज्ञान की चर्चा अधिक की गई है। यह शब्द सर्व प्रथम गोरख पंथियों से प्रभावित रहा तत्पश्चात यह कबीर पंथियो की रचनाओं में आया और बाद के साहित्य में दूहे का अर्थ भी ''साखी'' ग्रहण कर लिया गया है। कबीर ने प्रत्यक्ष ज्ञान को ही वरीयता देते हुए यह बात दोटूक साफ साफ कह दी है कि-

लाया साखि बनायकर इतउत अच्छर काट।
कह कबीर कब तक जिये जूठी पत्तल चाट॥(42)

यही साखी दूहा, दोहा या दोहड़ा वर्तमान में खडी बोली काव्य के अन्तर्गत जस का तस भाव गरिमा के साथ आकर उपस्थित हो गया। अतः आधुनिक काल में खडी बोली के अधिकांश कवियों ने भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम इसी दोहा छंद को बना लिया। कारण यही था कि

इस दोहा छन्द में विस्तार को संक्षिप्तीकरण का रुप देने की अनुभूति की व्यग्रता को समाहार शक्ति समर्पित करने की तथा गर्म लोहे पर भारी चोट मारने की अदभुत क्षमता है।

कबीर दास के पश्चात दोहा काव्य को रहीम ने सजाया हैं और गरिमा प्रदान की है दोहाकार रहीम दोहे की पहचान बताते हुए कहते हैं -

रुप कथा पद चारु पट कंचन दोहा लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्मगति, मोल रहीम विसाल ।।(43)

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आँहि।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिट कूदि बढि जाहिं ।।(41)

रहीम के दोहों का वर्ण्यविषय मुख्यतः नीतिविषयक ही रहा है जो आज भी जनमानस में प्रिय है।

रहीम के दोहे परम्परानुमोदित हैं फिर भी श्रृंगारिकता, भक्तिभावना, नैतिकता, प्रकृति प्रेम, उपदेशात्मकता आदि प्रवृत्तियों का समायोजन करने की क्षमता उनमें है...

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे, मोती मानुष चून ।।(45)

बडा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेंड खजर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागैं अतिदूर ।।(46)

वे 'रहीम' नर धन्य हैं, पर-उपकारी अंग।
बाँटन वारे को लगै, ज्यों मैंहदी को रंग।।(47)

रहीम एक मुसलमान थे। उन्होंने समाज के प्रति वही भावना व्यक्त की जैसी कबीर ने की थी उनके दोहे आज भी जनमानस के हृदय पटल पर छपे हुए हैं । आज के समाज को इनसे बहुत बडी शीख मिलती है। हिन्दी साहित्य को ऐसे अनमोल दोहे देकर रहीम ने धन्य कर दिया।

इसी कलावधि में रसखान हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आचार्य शुक्ल को भी स्वीकारना पड़ा है कि रसखान ने मात्र बावन दोहे रचकर प्रेमवाटिका कृति का प्रणयन किया है। जिसें सौन्दर्यानुभूति, रसानुभूति, प्रेम दर्शन, नैतिक मूल्य आदि के परिप्रेक्ष्य में प्रेम की नाना विधि अभिव्यंजना व्यापक फलक पर की गई है।

प्रेम अगम अनुपम, अमित सागर सरसि बखानि।
जो आवत इहिं ढिंग बहुरि, जात नहीं रसखानि ।।(48)

दोहा की उक्ति है उसे यह चरितार्थ करता है जो विश्व मैत्री का आधार है और ईश्वर प्राप्ति का साधन प्रेम तत्व की अनिवार्यता मानव के लिए न केवल अपेक्षित है अपितु अत्यावश्यक भी है। मानव का यही वह प्रेम है जो आत्मा का परमात्मा से सम्पर्क कराने में दूरभाष का कार्य करता है। इसीलिए प्रेम मानव का परम् धर्म, चरम कर्म तथा जीवन का मर्म है। जिसकी साधना साधक रसखान ने अपने दोहों के माध्यम से की है तथा मानव को जन्म जन्मान्तर से मुक्ति दिलाने का मार्ग प्रशस्त किया है।

प्रेम का वर्णन रसखान के दोहों में यत्र तत्र सभी जगह प्राप्त होता है। प्रेम ही वह रामबाण है जिससे संसार में सब कुछ सम्भव हो जाता है आत्मा-परमात्मा बन सकती है। रसखान के ऐसे ही प्रेम से गठित दोहे देखें जो 'प्रेम वाटिका' में संग्रहीत हैं।

प्रेम अगम अनुपम, अमित, सागर-सरिस बखानि।
जो आवत इहि ढिंग बहुरि, जात नहि रसखानि।।(49)

प्रेम-वारुनी छानिकै, वरुन भये जलधीस।
प्रेमहिं ते विषपानकरि, पूजे जात गिरीस।।(50)

अति सूछम कोमल अतिहि, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सवतें सदा, नित इकरस भरपूर।।(51)

जेहि बिनु जाने कछुहिं नहिं, जान्या जात विशेष।
सोइ प्रेम जेहि जानिकै, रहि न जात कछु सीष।।(52)

अर्थात प्रेम से बढकर कुछ नहीं है रसखान का समय (1558-1618) माना जाता है। प्रेम का रस भरे हुए दोहाकार रसखान ने समाज को प्रेमवाटिका का दिवाना किया । रसखान की भाषा इतनी कोमल व सरल है कि दोहों को पढने में, उन्हे गाने मे किसी प्रकार की तकलीफ़ (परेशानी) नही होती। एक तो दोहे की अपनी विशिष्ठता ऊपर से रसखान जैसे रचनाकार प्रेम का उपदेश दें तो रचना 'सोने पे सुहागा' सिद्ध होती है।

इस काल के प्रमुख कवियों ने चौपाइयों के बीच बीच में दोहा लिखकर प्रबंध काव्यों की रचनाएं भी की हैं । ऐसे काव्यों में कबीर के 'बीजक' में संग्रहीत रतौनियो के रूप में मिलता है।

जायसी कृत 'पद्मावत' तथा तुलसीकृत 'रामचरित मानस' इसी शैली के महाकाव्य है। हिन्दी साहित्य के मुसलमान कवियों में जायसी के दोहों की भी अपनी कीर्ति है। परन्तु जायसी का तो भारतीय छंद-शास्त्र से सीमित परिचय ही रहा था जिसके कारण उनकी रचनाओं में होने

वाले छंदों का प्रयोग भी अस्थिरता लिये हुए है। जायसी ने अपने दोहों का स्वरूप सन्तो की साखियों के माध्यम से ग्रहण किया है। अतः जायसी के दोहा काव्य में प्रायः यह देखा गया है कि विषम पद बारह ही मात्रा का है। और सम पद ग्यारह मात्रा का -

रूपवन्त मनि माथे चन्द्र घटि बह वारिढ।
ये मेदनि दरस लुभानी असतुति बिनवैं ठाढ़ि ।।(53)

जहाँ तक देखा गया है कि जायसी के कुछ दोहों में सोलह मात्राएं तक भी है। जायसी ने अवधी भाषा का प्रयोग अपने काव्य सर्जन में किया है। 'पदमावत' जायसी का श्रेष्ठ महाकाव्य है जिससे हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ श्रीवृद्धि हुई है। जायसी के काव्यों का वर्ण्यविषय हिन्दु समाज में प्रसरित कथाओं के आख्यानों को लेकर रहा है। 'पदमावत' महाकाव्य में ऐसी ही कथावस्तु का वर्णन है -

जायसी निम्न दोहों में प्रेम के विषय में कहते हैं कि-

जोन कहिस सत सुआटा, तोहि राजा कै आन।
है कोई एहि जगत महँ, मोरे रूप समान ।।(54)

जेहि दिन कहँ मैं डरति हौ, रैन छपावौं सूर।
लै चह दीन्ह कँवल कहँ मोकहँ होइ मयूर ।।(55)

तीन लोक चौदह खंड सबै, परे मोहि सूझ।
प्रेम छांडि नहिं लोन किछु, जो देखा मन बूझ ।।(56)

तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महं मारग प्रेम कर, सवै सराहैं ताहि ।।(57)

जायसी के बाद हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में दोहा का प्रयोग 'श्री रामचरित मानस' में तुलसीदास ने किया है। तुलसीदास ने दोहे में एक विषमपद में कहीं-कहीं बारह मात्राओं का प्रयोग भी किया है जो सम्भवता काव्य में जीवतता लाने के रूप में ही किया गया है-

जैसे -

''भोजन करत चपत चित, इत उत अवसर पाई?''

प्रथम चरण में बारह मात्राएं है -

गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा अत्यंत प्रिय छन्द रहा है, उन्होंने दोहा के विषय में लिखा है कि-

मनिमय दोहा दीप जहँ उर घट करे प्रकास।
तहँ न मोह तम मय तमी, कलि कज्जली बिलास।।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने दोहे का प्रयोग तो अपने काव्य में किया ही है। साथ ही पृथक से दोहावली नामक प्रसिद्ध कृति की रचना भी की है। भक्तिकाल में इस छंद की लोक प्रियता रहीम, कबीर व तुलसी के कारण ही बढी है।

तुलसीकृत रामचरित मानस में चौपाइयों के साथ में दोहो की जो योजना की गयी है वह अपने में एक अपनी अलग ही विशेषता लिए हुए है। जल प्रवाह सी बहती चौपाई को पढते जब पाठक अपना मंतव्य कुछ ही शब्दों में कहना चाहता है तो वहीं दोहा शब्दों के अर्थ में सागर को भरे सामने आ जाता है और कुछ ही शब्दों में कथन स्पष्ट हो जाता है। जैसे-

रामचरित मानस के धनुष भंग प्रसंग में परशुराम लक्षण से कहते हैं कि-

रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न सम्हार।
बल धरनी त्रिपुरार धनु, विदित सकल संसार ।।(58)

तुलसीदास की 'दोहावली' में संग्रहीत दोहों में प्रभु प्रेम व भक्तिभाव का चरम स्थिति तक वर्णन हुआ है। प्रभु पर श्रद्धा और विश्वास को लेकर तुलसी कहते हैं कि-

एक भरोसो, एक बल, एक आस विस्वास।
जौ धन बरषै समय सिर, जौ भरि जनम उदास ।।(59)

रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगे अंग।
तुलसी चातक-प्रेम को नित नूतन रूचि रंग ।।(60)

डोलत विपुल बिहंग बन, पियत पोखरिन बारि।
सुजस-धवल, चातक नवल, तुही भुवन दसचारि ।।(61)

आज बाल मुकुताहलनि, हिय सनेह तरु-मूल।
होई हेतु चित चातकहि, स्वाति सलित अनुकूल ।।(62)

एक राम-घन स्याम हित, चातक तुलसीदास।
तुलसी या चित चातकहि, तऊ तिहारी आस ।।(63)

भक्तिकाल में सूरदास का साहित्य भी हिन्दी के लिए वरदान रूप ही है। सूरदास कृष्ण भक्त थे उन्होंने जो अपनी बंद आंखों में अनुभूत किया। वह गाकर पदों में वर्णित किया। सूरदास कवि होने के साथ अच्छे गायक व संगीतग्य भी थे। हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति परक उनके पद अत्यन्त ही रोचक व श्रेष्ठ हैं।

सूरदास ने दोहा छन्द का प्रयोग अल्प ही किया है। फिर भी जहाँ किया है वह श्रेष्ठ है। भक्ति परक व जीवन को सही दिशा निर्देश की ओर संकेत करता है वे संगत का असर बताते हुए कहते हैं -

सीप गयो मुक्तभयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगत के फल 'सूर' ॥(64)

भक्तिकालीन कवियों में दादू दयाल का नाम उल्लेखनीय है। ये कबीर पंथी कवि थे, इन्होंने निर्गुण साधना पर विशेष जोर दिया है। वे ईश्वर को घट घट व्याप्त मानते हैं। उनकी नजर में कोई धर्म नहीं है। न हिन्दू न मुसलमान सब मानव एक हैं। सबका खून लाल है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा का वास है। अतः किसी को दुःख देने से परमात्मा को दुःख देने के समान है। दादू की ऐसी विचार धारा उनके काव्य में यत्र तत्र नजर आती है। दादू ने तत्कालीन काव्य सृजन की शैली ''दोहा'' पर विशेष रचनाएँ की है। जिनमें उनके नीति विषयक विचार द्रष्टव्य होते हैं-

काहे को दुःख दीजिए, साईं हैं सब माहिं।
'दादू' एकै आत्मा, दूजा कोई नाहिं ॥(65)

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल अर्थात श्रृंगार काल आताहै। इस काल क्रम में कवियों के वर्ण्य विषय में विशेषतः बदलाव आया विषय भी बदल गया। कविता जहाँ सार्वजनिक हुआ करती थी। वही रीतिकाल में वह दरबारी बन गयी।

इस काल में दोहा एक प्रमुख छंद के रुप में प्रतिष्ठित हो चुका था। जिससे अधिकतर रीति ग्रंथों की इस छंद में रचनाएं हुई। राजश्रयी आश्रय पाकर इस छंद की भी श्री वृद्धि हुई। कवियों ने धन के लालच में भी दोहे को पूरी ओजस्विता के साथ वर्णित किया।

सिद्ध सामन्त युग के बाद जिन कवियों ने अन्योक्ति के रूप में दोहे का प्रयोग किया उनमें से रहीम बिहारी, विक्रम, रसनिधि, बाबादीन दयाल गिरि, गिरधर आदि कवियों के नाम चिरपरिचित हैं। इन कवियों ने भावों की मार्मिकता तथा सौन्दर्य भावना की चेष्टा के साथ साथ लौकिक विषयों पर बहुत ही अच्छे दोहे लिखे हैं। जिस तरह नीति के लिए रहीम के दोहे जनप्रिय हैं उसी तरह

श्रृंगारी दोहे बिहारी के जनप्रिय हैं। बिहारी ने दोहा छंद में 'सतसई' की रचना की है जिसके विषय में कहा जाता है कि-

सतसैया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर।
देखन मे छोटे लगें, घाव करें गंभीर ।।(65)

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी ने मात्र सात सौ बीस दोहे रचकर सतसई कृति के प्रणयन द्वारा हिंदी काव्य जगत में स्थान प्राप्त कर लिया। आज भी प्राइमरी स्तर से लेकर विश्वविद्यालयों के स्तर तक बिहारी के दोहे पढाये जाते हैं। जिससे उनके दोहों की प्रासंगिकता स्वतः ही सिद्ध है। बिहारी को दोहा काव्य की भक्ति परक, नीतिपरक, श्रृंगारिक ज्योतिष गणित, आयुर्वेद, इतिहास, मनोविज्ञान आदि से सम्बन्धित वैचारिक अवधारणा ने सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित कर दिया। गागर मे सागर भरने की क्षमता रखनेवाला छंद दोहा ही है और गागर में सागर भरनेवाले मात्र बिहारी ही ठहरते हैं। जिनकी अद्‌भुत विलक्षण प्रज्ञा ने प्रांजल परिष्कृत एवं परिमार्जित व्रजभाषा को उक्ति वैचित्र्य एवं चित्रात्मकता के बल पर वरेण्य बना दिया। राज प्रशस्ति, प्रकृति चित्रण, रीति निरुपण भक्तिभावना नीति विषय श्रृंगारिक प्रवृत्ति अन्योक्ति एवं प्रेम प्रसंग आदि-आदि की प्रवृत्तियों का समाहार बिहारी के दोहों में मिलता है।

जो कोऊ रस रीति को, समुझ्यौ चाहैसार।
पढ़ै बिहारी सतसई, कविता को सिंगार ।।(66)

सोहत ओढ़े पीत पर, श्याम सलोने गात।
मनोनील मनि सैल पर, आतप परयो प्रभात ।।(67)

अधर धरत हरि के परत, ओठ दोठि पट जोति।
हरे बाँस की बांसुरी, इन्द्र धनुष सम होति ।।(68)

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग।
दीपति देह दुहूनि मिलि, दिपत ताफता रंग ।।(69)

भूषन भार संभारि है, क्यों यह तन सुकुमार।
चलति न सूधे पाय धरि, सोभा ही के भार ।।(70)

ऐसे श्रृंगारिक दोहा जिनमे यौवन नायिका के रुप का वर्णन बिहारी ने बडी ही मार्मिकता के साथ किया है। बिहारी ने कृष्ण के उस पराक्रम को भी बडी ही सजीवता, मार्मिकता के साथ वर्णन किया है । जो उन्होंने बचपन मे ही किया था-

प्रलय करन बरषन लगे, जुरि जलधर एक साथ।
सुरपति गर्व हर्‌यो हरषि, गिरिधर गिर धर हाथ ॥(71)

बिहारी के प्रत्येक दोहों में शब्दों का चयन विशेष महत्व रखता है। जो समय के अनुकूल फिट बैठ जाता है।

हिन्दी साहित्य में केशवदास का नाम रीतिकालीन श्रेष्ठ कवियों में लिया जाता है। केशव ने रसिक प्रिया, कवि प्रिया, छंद माला, रामचंद्रिका आदि ग्रंथों का निर्माण करके अपने सामर्थ्य का झण्डा साहित्य जगत में गाड़ दिया। केशव प्रमुख रुप से श्रृंगारी कवि हैं उन्होंने अपने काव्य में अलंकार का उपयोग अत्यधिक किया है। केशवदास काव्य में अलंकार की अनिवार्यता को लेकर कहते हैं कि-

जदपि सुजाति सुलक्षणी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण विनु सुहावती, कविता वनिता मित्त ॥(72)

अलंकार कवितान के सुति-मुनि विधि विचार।
कविप्रिया केशव करी, कविता को श्रृंगार ॥(73)

केशव की रामचंद्रिका कथावस्तु के अनुसार तो आध्यात्मिक कृति है परन्तु केशव की अलंकार प्रियता के कारण उसमें शृंगारिकता भी व खूबी देखी जा सकती है।

केशव ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। उन्होंने अनेक काव्यात्मक चमत्कार इसी भाषा में वर्णित किये है। मुक्तक तथा प्रबंध काव्यों की रचनाएं करके हिन्दी साहित्य मे अलंक़ार के महत्व को बखूबी दिखाया है। उनके मुक्तक काव्य ग्रंथों में रसिक प्रिया, कविप्रिया, नखशिख ग्रंथों का विशेष स्थान है-

केशव की कवि प्रिया ग्रंथ में सोलह प्रभाव हैं -

केशव सोरह भाव शुभ सुबरनमय सुकुमार।
कवि प्रिया के जानिए,ये सोरह शृंगार।।

केशवदास काव्य में श्रृंगार रसकों सबसे महत्वपूर्ण मानते हुए कहते हैं कि-

नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार।
सबको केशवदास हरि नायक है सिंगार ॥(74)

शोभित वैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप।
तहँ राजा दसरथ लसै, देव देव अनुरुप ।।(75)

सीताजू रघुनाथ को, अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल ।।(76)

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के कवियों मे 'देव' जिनका पूरा नाम देवदत्त है। कवि देव ने ''भाव विलास'' रचना का निर्माण किया है। काव्य स्वरूप की चर्चा करते हुए देव ने अपने ग्रंथ 'शब्द रसायन' में करते हुए उल्लेख किया है। कवि देव शब्द को जीव तथा अर्थ को मन तथा रसमय सौंदर्य को काव्य का शरीर मानते हैं। छंद और गति ये दोनो ही उसे संचारित और प्रवाहित करते हैं। देव ने लिखा है कि-

शब्द जीव तिहि अरथ मन रसमय सुजस शरीर।
चलत बैह जुग छंदगति अलंकार गम्भीर ।।(77)

श्री देव छन्द को कविता कामिनी की गति मानते हैं। देव ने अपने काव्य रचना में कई दोहों का सृजन किया है।

रीतिकालीन कवि रसलीन के वैसे तो अधिकतर दोहे नही मिलते पर जो भी हैं वे उत्कृष्ठ हैं। जिनमें साहित्य की सभी गरिमाएं छुपी हैं। कवि रसलीन का निम्न दोहा हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है-

अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकझुक परत, जेहि चितवत इकबार ।।(78)

इस दोहे में कवि रसलीन ने ऐसे शब्दों का गठन किया है कि जो सबके बस की बात नहीं। अमिय अर्थात अमृत हलाहल अर्थात विष, और मद अर्थात मदिरा फिर, दोहा के दूसरे चरण में श्वेत, श्याम, रतनार शब्द है। अर्थात अमृत श्वेत, हलाहल श्याम, मद रतनार अर्थात दोहा की प्रथम पंक्ति में प्रथम व द्वितीय चरण क्रमशः एक दूसरे के पूरक हैं। इसी प्रकार द्वितीय पंक्ति में जियत, म्रत, झुकझुक परत क्रमशः प्रथम चरण अमिय, हलाहल, मद के पूरक है। कवि रसलीन का यह दोहा हिन्दी साहित्य में अमूल्य धरोहर है जो अपने आप में शब्द अर्थ उचारण की दृष्टि से अमर है। इस दोहे में नयनों का सुन्दर सार्थक सांग रूपक है जिसमें कवि ने अमृत विष और मदिरा की कल्पना तथा प्रयोग सम्भवतः पहली ही बार किया है। नयनों का इतना सुन्दर वर्णन अन्यत्र नही मिलता।

रीतिकालीन अन्य कवियों में पद्युमनदास का नाम भी उल्लेखनीय है। इनका समय सं.1741 के बाद अर्थात 1751-60 के आसपास का माना जाता है। श्री पद्युमनदास का प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्य मंजरी' है जिसमें उनके आश्रदाता बादम नगर के शासक रामसिंह के पुत्र दलेलसिंह की स्तुति की गयी है। इस ग्रंथ का सिद्धान्थ निरुपण ''दोहो'' में किया गया है तथा उदाहरण प्रायः कवित्त शैली में है-

पदुमन मणित सोहावने, काव्य मंजरी माहिं।
कवित दोहर्शन सातसौ सोरह अधिक सोहाहिं ॥(79)

इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में कवि शिक्षा सम्बंधी सामग्री है। कवि का लक्षण प्रस्तुत करते हुए पद्युमन दास कहते हैं-

ज्ञान व्याकरण कोष में, छंद ग्रंथ को जान।
अलंकार रस रीति मे निपुन सुकवि तेहिमान ॥(80)

रीतिकाल में राजा महाराजा अपने राज्यशासन के विस्तार हेतु युद्ध किया करते थे। इन युद्धों का सजीव वर्णन करना अत्यधिक कठिन् था परन्तु दोहा छंद अपने में एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो युद्ध का वर्णन करने के लिए रीतिकाल में खूब प्रसिद्ध रहा है-

युद्ध धर्मबल बरिगिए, वर्षा तोप अधात।
धूरि धूम शोषित नदी, सर मंडप अनिघात ॥

भंग पताका चमर रथ करि कर धनुषा किष्टि।
सूरि नारि सूरन्ह बरै, सुर सुमनस की विष्टि ॥

रीतिकाल में भिखारीदास ने भी दोहा छंद का भरपूर प्रयोग किया है। उनके ''रस सारांश'' नामक ग्रंथ में अधिकांश तह दोहा छंद में ही रस के सम्बंध में परिचय दिया गया है। आचार्य भिखारीदास कहते हैं कि-

चाहन जाति जु थोर ही, रस कवित्त को वंश।
तिन रसिकन के हेत यह कीन्हों रस सारांश ॥(81)

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रस सारांश का रचना रचनाकाल सं.1807 के आसपास ही माना जाता है जो निम्नलिखित दोहे में वर्णित है-

संवत विक्रम भूप को, अट्ठारह सै सात।
माधव सुदि तेरस गुरौ आखर थल विख्यात ।।(82)

रीतिकाल में अधिकांशतः रचनाएं ब्रजभाषा काव्य में ही हुई है। दोहा छंद भाव अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहा है। अपने चिर काल से ही वह जन मानस के स्मृति पटल पर रच बस जाने का सामर्थ्य रखता रहा है। परन्तु धीरे धीरे भारतेन्दु युग में काव्य का स्वरुप अधिकतर बहिर्मुखी हो गया था। अतः इस युग में अन्योक्ति के रुप में दोहे का आश्रय क्रम ही लिया गया था। परन्तु इस युग की सामाजिक विकृतियों को दूर करने के लिए कवियों ने मुकरियों को माध्यम बनाया जो निम्न उदाहरण में द्रष्टव्य है-

भीतर - भीतर सब रस चूसै ।
बाहर से तन मन धन मूसै ।।(83)

ऐसी मुकरियों में तात्कालिक जीवन को प्रतिबिम्बत किया गया है। परिवर्तन के पथ पर सभ्यता के साथ भागने में संस्कृति की गति सदैव ही मंद रहती है। परिणामतः संक्रान्तिकाल में भाषायी प्रज्वलता के व्यामोह में सभ्यतानुगामी सर्जकों ने इस छंद को द्रष्टि से ओझल कर दिया। जब हिन्दी कविता जनपद से सम्पूर्ण छांदसिक लेखन को बहिष्कृत करने का उपक्रम रचा गया तो दोहा अतीत की वस्तु बन गया। लेकिन कविता के टूटते जन संवाद की चिंताओं ने समकालीन कविता के कुछ छांदिक कवियों का ध्यान फिर इस ओर गया, मुख्यतः गीत और ग़ज़ल के शताधिक रचनाकार इस ओर उन्मुख हैं और सहस्त्राधिक दोहों की रचना कर चुके हैं। लेकिन ये दोहे न तो रहीम की परम्परा के हैं न रसलीन या बिहारी की परम्परा के। इसका अपना प्रति संसार है समकालीन संसार। हिन्दी गीत को मुकुट बिहारी सरोज और हिन्दी गज़ल को दुष्यन्त कुमार ने जो सामाजिक सरोकारों से मुडा चेहरा दिया। समकालीन दोहाकार वही चेहरा दोहे को देने के उपक्रम में लगे हैं। उनमें निजत्व का सतरंग है प्रकृति कीं मोहक ध्वनियाँ हैं। मिथक हैं और समकालीन समाज की कुरुपताएं है। समकालीन दोहा लेखन कविता के जनपद में छंद की वापसी से भी जोडकर देखा जा सकता है।

आधुनिक कालीन कवियों ने दोहा छंद को रीतिकालीन परम्परा में वर्णित ब्रजभाषा काव्य से निकाल कर उसका प्रयोग खड़ी बोली की कविताओं में प्रारम्भ किया।

आज के नये दोहा छंद की पुर्नस्थापना लगभग तीन सौ वर्षो बाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हुई तथा नव्य संस्कार दिये जिसके परिणाम स्वरूप हिन्दी भाषा एवं साहित्य का संवर्धन हुआ तथा नवजागरण मंच की स्थापना हुई। भाषा परिमार्जन परिष्कार में दोहा लेखन ने शक्ति प्रदान की इससे

पहले संक्रान्ति काल में दोहा की प्रतिष्ठा कवियों ने दबा दी थी। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दोहा की प्राण प्रतिष्ठा कर पुनः जाग्रत करने का भगीरथ प्रयास किया जिससे राष्ट्रीय सांस्कृतिक, सामाजिक, श्रृंगारिक, भक्ति परक एवं भाषायी प्रेम की चेतना सर्वत्र मुखरित हुई। अज्ञानता, जड़ता, मूढता आदि मनोविकारों को दूर करने की शक्ति एवं सामर्थ्य रखने वाली राजभाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रुप में प्रतिष्ठित करने के स्वप्न द्रष्टा आधुनिक युग के प्रथम हिन्दी दोहाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही थे जिन्होंने स्पष्ट रुप से उद्‌घोष किया कि -

निज भाषा उन्नति अहै, सव उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञानके, मिटै न हियको सूल ।।(84)

- भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का सम्बोधन मातृ-भाषा प्रेम

हिन्दी नवजागरण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के दोहे रामबाण सिद्ध हुए हैं। भावाभिव्यक्ति का सरल, सहज एवं सुगम सुबोध माध्यम अपनी मातृभाषा राजभाषा, राष्ट्रभाषा होती है। जिसके माध्यम से उन्होंने अपनी मातृभाषा प्रेम को अभिव्यक्ति आधुनिक खड़ीबोली के दोहों के माध्यम से की है वे कहते हैं कि-

धर्म जुद्ध विद्या कला, गीत काव्य अरु ज्ञान।
सबसे समझन जोग है, भाषा माँहि समान ।।(85)

अंगरेजी पढिके जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञानबित, रहत हीन के हीन ।।(86)

इक भाषा इक जीव इक मति सब घर के लोग।
तबै बनत है सवन सौं मिटत मूढ़ता सोग ।।(87)

तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुने जो कोय।
यह गुन भाषा और महँ, कबहुँ नाहीं होय ।।(88)

- भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र मातृ-भाषा प्रेम

द्विवेदी काल में धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकृतियों को दूर करने के लिए फिर अन्योक्तियों का सहारा ही लिया गया तथा वे अन्योक्तियाँ अधिकतर दोहों के माध्यम से ही व्यक्त की गई हैं। गिरधर शर्मा नवरत्न, लक्ष्मी वाजपेयी, रामचरित उपाध्याय, रुपनारायण पाण्डेय, सैयद, मीर अली, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि औध' और वियोगी हरि आदि ने आधुनिक काल के प्रथम चरण में अन्योक्ति के लिए दोहे को ही चुना। वियोगी हरि की 'वीर सतसई' श्री महेशचन्द्र प्रसाद

की स्वदेश सतसई, उल्फतसिंह सेंगर और जगतसिंह सेंगर की किसान सतसई तथा राजस्थानी में लिखी गई नाथूदान महिवारिया की वीर सतसई के द्वारा भी दोहा छंद अपने वर्चस्व और स्वरुप को सफल करने में पूर्ण सिद्ध हुआ है। अपभ्रंश से यह दोहा छंद धीरे-धीरे राजस्थानी की ओर मुड गया था। राजस्थानी में इसके तीन रुप मिलते हैं । बडों दूहो तूवेरी में पहले और चौथे चरण में 11-11 मात्राएं तथा दूसरे और तीसरे चरण की 13-13 मात्राएं होती है। दूहो तथा अनमेल दूहो प्राचीन दोहों के पहले और तीसरे चरण में 13-13 मात्राएं तथा दूसरे और चौथे चरण की 11-11 मात्राएं होती हैं। राजस्थानी तूवेरी दूहा में यह क्रम उल्टा होता है। पहले ओर चौथे चरण की तुक मिलने से अनमेल दूहा तथा दूसरे और तीसरे चरण की तुक मिलने से मध्यवेल दूहा बनता है। इन सबका विवेचन उदाहरण हम आगे कर आये हैं। दोहा लोक साहित्य के लिए सरलतम छंद है।

द्विवेदी युगीन काव्यधारा में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा एवं प्रोत्साहन ग्रहण कर श्रीधर पाठक, मैथिली शरण गुप्त, हरि ओम, मुकुटधर पांडेय, लोचन प्रसाद पांडे, रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय आदि रचनाकारों ने कुछ दोहों की रचना की लेकिन उनके समक्ष इतिवृत्तात्मकता एवं वर्णनात्मकता का प्रश्न था। जिसके कारण उन्हें दोहा छंद में सफलता नहीं मिली। इसीलिए दोहा द्विवेदी युग में मुख पृष्ठ से हटकर हांशिए पर चला गया। यही स्थिति एवं परिस्थिति छायावादी युग एवं छायावादोत्तर में भी बनीरही। गीत नवगीत का सृजन चलता रहा जिसमें छंद, लय, ताल का कोई अस्तित्व नहीं था। सिर्फ अपनी बात कहना ही कवि का ध्येय बन गया था। परन्तु स्वाधीनता के पश्चात् नए कवियों ने समय की नाडी को ध्यान में रखकर अपनी वाणी को दोहा सृजन के अर्जन में लगा दिया । इस प्रकार दोहा छंद की पुनर्स्थापना हुई और अद्यतन परिवेश में दोहाकारोने थोक में विभिन्न विषयों एवं क्षेत्रों में दोहा रचकर क्षेत्र विस्तार किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जिन दोहाकारों ने दोहा लेखन में अपना योगदान किया है। उनमें श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' दिनेश शुक्ल डा. अनंतराम मिश्र, चिरंजीत, विश्व प्रकाश दीक्षित, पाल भसीन, डा. भारतेन्दु मिश्र, बाबूराम शुक्ल, सूर्यभानु गुप्त, निदा फाजल, यश मालवीय, कैलाश सेंगर, हरीश निगम, जहीर कुरेशी, कुमार रवीन्द्र, हस्तीमल हस्ती, डॉ. कुँअर बेचैन, राजेन्द्र गौतम, डॉ. गोपाल बाबू शर्मा, शिवशरण दुबे, डा. महेश दिवाकर, सतीश गुप्ता, डा. उर्मिलेश, रामबाबू, रस्तोगी, डा. राम सनेही लाल शर्मा, डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय, आचार्य भगवत दुबे, राधेश्याम शुक्ल, रामनिवास मानव आदि दोहाकार उल्लेखनीय हैं। इन दोहाकारों ने दोहा छंद की अभिवृद्धि एवं समृद्धि में अपनी अहम भूमिका निर्भा है। अब दोहा का नया धरातल बना है। इन रचनाकारों ने दोहे को नया आयाम दिया है। मुक्त कण्ठ से स्वागत किया है।

प्रायः सभी आधुनिक दोहाकारों ने युगीन तथ्यों को वाणी देने में अपनी भावशबलता की समाहार क्षमता का परिचय दिया है। इस संदर्भ में भी देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जी ने हजारों दोहे लिखकर इस सत्य की सम्यक् पुष्टि की है। इन्द्र जी नें दोहा छंद को कला पक्ष एवं भावना पक्ष की जीवंतता प्रदान करते हुए अपने कथ्य को नए आयाम के साथ प्रस्तुत करने में खूब सफलता प्राप्त की है-

पहले बाहर से यहाँ, आये नादिर शाह।
अब अपने ही लूटते, सारा देश गवाह ।।[89]

शमशीरों की छांव में कौन करे फरियाद।
पंछी सी गूँगी प्रजा, शाह हुए सैयाद ।।

राज भवन को ताकते, भीड़ भरे फुटपाथ।
कुछ लँगडी बैसाखियाँ लकवा मारे हाथ ।।

मेघ रुई के देखकर, सागर हुआ उदास।
हर अंकुर की आंख में एक कत्थई प्यास ।।

इसी क्रम में श्री राजेन्द्र गौतम ने भी परिष्कृत शैली तथा नूतन भाव आविष्कृत करते हुए दोहा सृजन में मील के पत्थर का काम किया है। वक्त की नब्ज पर हाथ रखकर दोहा लिखने वाले गौतम जी पहले दोहाकार हैं। भारत दोहावली के रचयिता श्री सतपाल सिंह चौहान भारत के दोहों में लौकिक तथा अलौकिक ज्ञान का भक्ति-प्रेम के साथ अनूठा संगम है। मन की जटिलतम अनुभूतियों को वे सरलतम अभिव्यक्ति की सूक्तियों में ढाल देने की सु-क्रिया में सूब सफल हुए हैं-

धर्म-ग्रंथ सब कह रहे मानवता है एक।
फिर भी क्यों नित हो रहे, नर-संहार अनेक।।[90]

बोरी भरे बिनासिया झोली भरै फकीर।
बोवणिया भूखा मरै, यह कैसी तकदीर ।।[91]

नैना भीतर झांककर, पढते ज्ञानी लोग ।
किन नैनों में भोग है किन नैनो में योग ।।[92]

''जैसे'' नामक दोहा संग्रह के कवि श्री हरेराम समीप ने अपने पाँच सौ चार दोहों में अनेक प्रकार के विचारों को अभिव्यक्त किया है। समीप जी के यह दोहे बहती हवा के वक्षस्थल पर भागते समय के भींगते हुए हस्ताक्षर हैं। उनके दोहों का प्रत्येक सत्य अनुभूति की आँच पर तपकर काँच

के समान निरवर व चमक चुका है। श्री समीप जी के ऐसे ही विचारों से गठित दोहों को हम निम्न देख सकते हैं। जिसमें जीवन की सच्चाईयों का वर्णन करते हुए कवि समीपजी कहते हैं कि-

मरने पर उस व्यक्ति के, बस्ती करे विलाप।
पेड़ गिरा तब हो सकी ऊँचाई की नाप ।।[93]

कल तक था जिस जगह पर वैभव महल विशाल।
वहीं खुदाई में मिले, ढेरों नर-कंकाल ।।[94]

समीप जी आज की राजनीति व शासन व्यवस्था की सच्चाई को उकेरते हुए कहते हैं कि-

अस्पताल में मिल रही उसी दवा की भीख।
जिसके इस्तेमाल की निकल गई तारीख ।।[95]

दोहा सृजन की इसी श्रृंखला में श्री नरेन्द्र आहूजा विवेक की ''विवेक दोहावली'' प्रासंगिक चर्चा का विषय भी है। श्री विवेक जी के दोहे पुरातनता की लीक से हट कर युग बोध से प्रेरित तथा समयसापेक्ष हैं। बाह्याचारों, रुढियों और जीर्ण शीर्ण विचारों को चुनौती देने में इन दोहों की भूमिका सार्थक तथा सराहनीय मानी जायेगी। परम्परा से चले आ रहे आडम्बर व मान्यताओं पर श्री नरेन्द्र चोट करते हैं । उन्होंने अपने दोहों में नवयुगी विचार धारा का प्रवाह किया है जो समय के साथ बदलते हुए समाज का वर्णन करते हैं-

सोता वह फुटपाथ पर खाता कचरा बीन।
आजादी के बाद तो दीन और भी दीन ।।[96]

अजब शहर के लोग हैं, हँसें मिलाएँ-हाथ।
लेकिन विपदा में कभी नहीं निभाते साथ ।।[97]

दोहा जैसे प्राचीन छन्द को व्यापकता देनेवालों में चर्चित हस्ताक्षर के रूप में श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' (आँखों खिले पलाश) श्री पाल भसीन (अमलतास की छाँव), श्री दिनेश शुक्ल (पानी की बैसाखियाँ), श्री विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक' (तुजुक हजारा) विभाकर आदित्य शर्मा (रंग रंग के स्वर), श्री भारतेन्दु मिश्र (कालाय तस्मै नमः) बाबूराम शुक्ल (हर सिंगार के फूल) तथा आचार्य भगवत दुबे श्री वेद प्रकाश पाण्डेय श्री राजकुमार शर्मा, श्री कपूर चतुर पाठी आदि के नाम अविस्मरणीय हैं।

दोहा की गति छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, नई कविता, अकविता काव्यधारा के संक्रमण काल में धीमी हो गई थी। लेकिन अब वह पुनः अपने पुरातन गौरव को प्राप्त कर सकी है जिसका

साक्ष्य प्रस्तुत करता है। यह दोहा-

कविजन स्वागत में खडे, दोहा लौटा देश।
कविता खुश हो दे रही, छंदों को संदेश ।।(98)

आज के आधुनिक नए दोहाकारों में अशोक 'आनन' अशोक अंजुम, उमा शंकर मन मौजी, ओम वर्मा, अंसार कंबरी, कृष्ण स्वरुप शर्मा, डॉ. किशोर काबरा, कोमल शास्त्री, घमण्डीलाल अग्रवाल, दिनेश सिन्दल, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', डॉ. ध्रुवेन्द्र भदौरिया, नित्यानंद तुषार, पुरुषोत्तम यकीन, प्रेम किशोर पटाखा, बंशीधर चतुर्वेदी, डॉ. मिथिलेश दीक्षित मुनीर बख्श, यादराम शर्मा, रघुनाथ प्रसाद, डॉ. राम निवास, डॉ. वीरेन्द्रकुमार बसु, शम्भुदयाल सिंह, शिवओम अम्बर, सूर्यकुमार पाण्डेय, सोम ठाकुर, हरेराम समीप, आदि का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। अधिकांश दोहों में समसामयिक परिवेशजन्मा हैं जिसमें निश्छल अनुभूति सामाजिक संदर्भों में अभिव्यक्त हुई हैं।

अद्यतन परिवेश में डॉ. देवन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के सम्पादनत्व में सप्तपदी श्रृंखला में छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं तथा सातवां खण्ड भी प्रकाशनार्थ प्रतीक्षारत है। थोक में दोहा के लेखन की प्रवृत्ति से स्तर में गिरावट अवश्य आयी है, मूल्य बोध की अवमानता हुई है। काव्य निकष की अनदेखी हुई है तथा रचना धर्मिता पर प्रश्न चिह्न अंकित हुए हैं। फिर भी दूसरी और साहित्य सागर का क्षेत्र विस्तार हुआ है।

दोहा लेखन के लिए अपनी धरती मिली है। अपने ही लोगों, समाज परिवार का दुःख दर्द ही लेखन का विषय बना है तथा काव्य जगत में व्यापकता के साथ क्षितिज विस्तार हुआ है। जिसका ऐतिहासिक परिपेक्ष्य अपनी अलग महत्ता, उपयोगिता एवं सार्थकता सिद्ध करता है। पुरातनकाल में दोहों की आत्मा गुरु महिमा, नीति, भक्ति, श्रृंगार एवं दरबार तक ही सीमित थी परन्तु आज के अद्यतन परिवेश में भाषायी सम्प्रेषणीयता आत्मबोध, लोक मंगल तथा सामाजिक, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से भरी पडी है।

आधुनिक अद्यतन दोहे अपनी ताजगी, नव्य चेतना, नए संस्कार, नव्य भाषा व्यंग्योक्ति, सूत्रात्मकता नए बिम्ब एवं प्रतीक से समन्वित मंडित एवं अलंकृत है। जिसमें मौलिकता की सतही पहचान गुण की अपेक्षा परिणाम पर द्रष्टि है। प्रतियोगी प्रवृत्ति, होड की आकांक्षा, अभिलाषा तनाव ग्रस्त वातावरण, समयाभाव, लेखन की बाह्यता, रचनाकार की परिस्थिति, आत्म प्रकाशन की लालसा, आत्मदान की भावना, मनोदशा एवं मानसिक धरातल आदि तथ्यों कथ्यों एवं संत्यों का रस्योद्घाटन मिलता है।

आधुनिक दोहों में लक्षणा एवं व्यंजना की अपेक्षा अभिधा शक्ति का आधिपत्य अधिक परिलक्षित होता है। इसलिए समग्रतः यह कहा जा सकता है कि अपनी सहजता एवं लघुता वृत्ति से गूढ एवं गम्भीर भाषाभिव्यक्ति की सम्प्रेषणीयता दोहा छंद में निहित है जिससे इसकी परम्परा पुनः स्थापित हो गई है।

युग बोध के अनुसार दोहों के स्वरुप में, प्रकृति एवं प्रवृत्ति में भी परिवर्तन स्वाभाविक था। आधुनिकता की संवेदना, कलात्मकता की अभिव्यक्ति, तथा भाषायी सम्प्रेषणीयता का सामंजस्य एवं तादात्म्य सम्प्रति दोहों में आज भी विद्यमान है। अतएव दोहा छंद की प्रासंगिकता मानवीय मूल्यों, जीवनादर्शो एवं सामाजिक संवेदनाओं मे है। दोहा छन्द में गठित काव्य धारा हिन्दी साहित्य जगत को रसानुभूति कराने में सर्वथा सक्षम सिद्ध होगी।

संदर्भ सूची

1) जनप्रचलित लोकश्रुति पद

2) श्री जगन्नाथ प्रसाद ''भानु'' कृत छन्द प्रभाकर से उधृत

3) जयशंकर प्रसाद कृत ''स्कंद गुप्त'' नाटक से उधृत

4) मीराबाई का स्फुट पद

5) ''नावक के तीर'' दोहा संग्रह के समीक्षा भाग से श्रीराम ''मधुकर का कथन''।

6) रत्नावली द्वारा कथित जन प्रचलित दोहा।

7) गो. तुलसीदास कृत दोहावली

8) गो. तलसीदास कृत दोहावली

9) वही

10) मैथिलीशरण गुप्त कृत ''द्वापर'' के मंगलाचरण से

11) रहीम दोहावली का प्रचलित दोहा

12) अमीर खुसरों का स्फुट पद

13) केशव दास का जनप्रचलित दोहा

14) बिहारी सतसई

15) राजस्थानी दोहा साहित्य सं. गोवर्धन प्रसाद शर्मा

16) वही " " " "

17) वही " " " "

18) वही " " " "

19) वही " " " "

20) कालीदास कृत विक्रमोर्वशीयम् (4/8)

21) मुनि देवसेन कृत ''श्रावकाचार''

22) सरहपाद कृत स्फूट पद

23) मुनि रामसिंह कृत ''पाउड दोहा'' पद संख्या-15

24) मुंज कवि की ''प्रबंध चिन्तामणी'' से

25) हिन्दी साहित्य का बृद्ध इतिहास (प्रथम खण्ड) पृष्ठ 352

26) वही " " " "

27) ''साहित्य सरोवर पत्रिका'' भोपाल, मध्यप्रदेश, सम्पादक - कमलकान्त सक्सेना, अंक - सितम्बर 2001

28) रहीम दोहावली।

29) वही " " " "

30) वही " " " "

31) गो. तुलसीदास रचित स्फुट पद

32) बिहारी सतसई के दोहों से सम्बंधित लोकोक्ति।

33) रसखान कृत ''प्रेम वाटिका'' से उधृत

34) चंदवरदायी से जुडा एक जनश्रुति दोहा।

35) अमीर खुसरों

36) कबीरदास की साखी में संग्रहित दोहा

37) वही " " " "

38) वही " " " "

39) वही " " " "

40) वही " " " " (गुरुदेव को अंग)

41) वही " " " "

42) वही " " " "

43) रहीमदास कृत ''रहीम दोहावली''

44) वही " " " "

45) वही " " " "

46) वही " " " "

47) वही " " " "

48) रसखान कृत 'प्रेमवाटिका' से

49) वही " " " "

50) वही " " " "

51) वही " " " "

52) वही " " " "

53) मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत से

54) वही " " " "

55) वही " " " "

56) वही " " " "

57) वही " " " "

58) गो. तुलसीदास कृत ''रामचरित मानस'' अयोध्याकाण्ड।

59) गो. तुलसीदास कृत ''दोहावली'' से

60) वही " " " "

61) वही " " " "

62) वही " " " "

63) वही " " " "

64) सूरदासजी द्वारा रचित नीति विषयक जन प्रचलित दोहा।

65) दादू दयाल का मुक्तक पद

66) बिहारी सतसई से उधृत

67) वही " " " "

68) वही " " " "

69) वही " " " "

70) वही " " " "

71) वही " " " "

72) केशवदास कृत 'कवि प्रिया' से

73) वही " " " "

74) वही " " " "

75) केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका' से

76) वही " " " "

77) कवि देवदत्त कृत 'शब्द रसायन' से।

78) कवि रसलीन का स्फुट पद

79) पद्युमनदास कृत 'काव्यमंजरी' से

80) वही " " " "

81) भिखारीदास कृत ''रस सारांश'' से

82) वही " " (रस सारांश का समय बताता दोहा)

83) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र कृत ''भारत दुर्दशा'' से

84) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का सम्बोधन मातृभाषा प्रेम।

85) वही " " " "

86) वही ” ” ” ”

87) वही ” ” ” ”

88) वही ” ” ” ”

89) देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' मासिकागद (त्रैमासिक) अंक-18, सन् 2003
सम्पादक डॉ. श्याम सखा 'श्याम' रोहतक हरियाणा

90) सतपालसिंह चौहान कृत ''भारत दोहावली'' से

91) वही ” ” ” ”

92) वही ” ” ” ”

93) हरेराम नेमा 'समीप' कृत जैसे दोहा संग्रह की पद सं. 463

94) वही ” ” ” ” पद संख्या - 199

95) वही ” ” ” ” पद संख्या - 139

96) श्री नरेन्द्र अहूजा कृत ''विवेक दोहावली'' से

97) वही ” ” ” ”

98) मसि कागद (त्रैमासिक) पृष्ठ 47, अंक 18
संपादक - डॉ. श्याम सखा 'श्याम'।